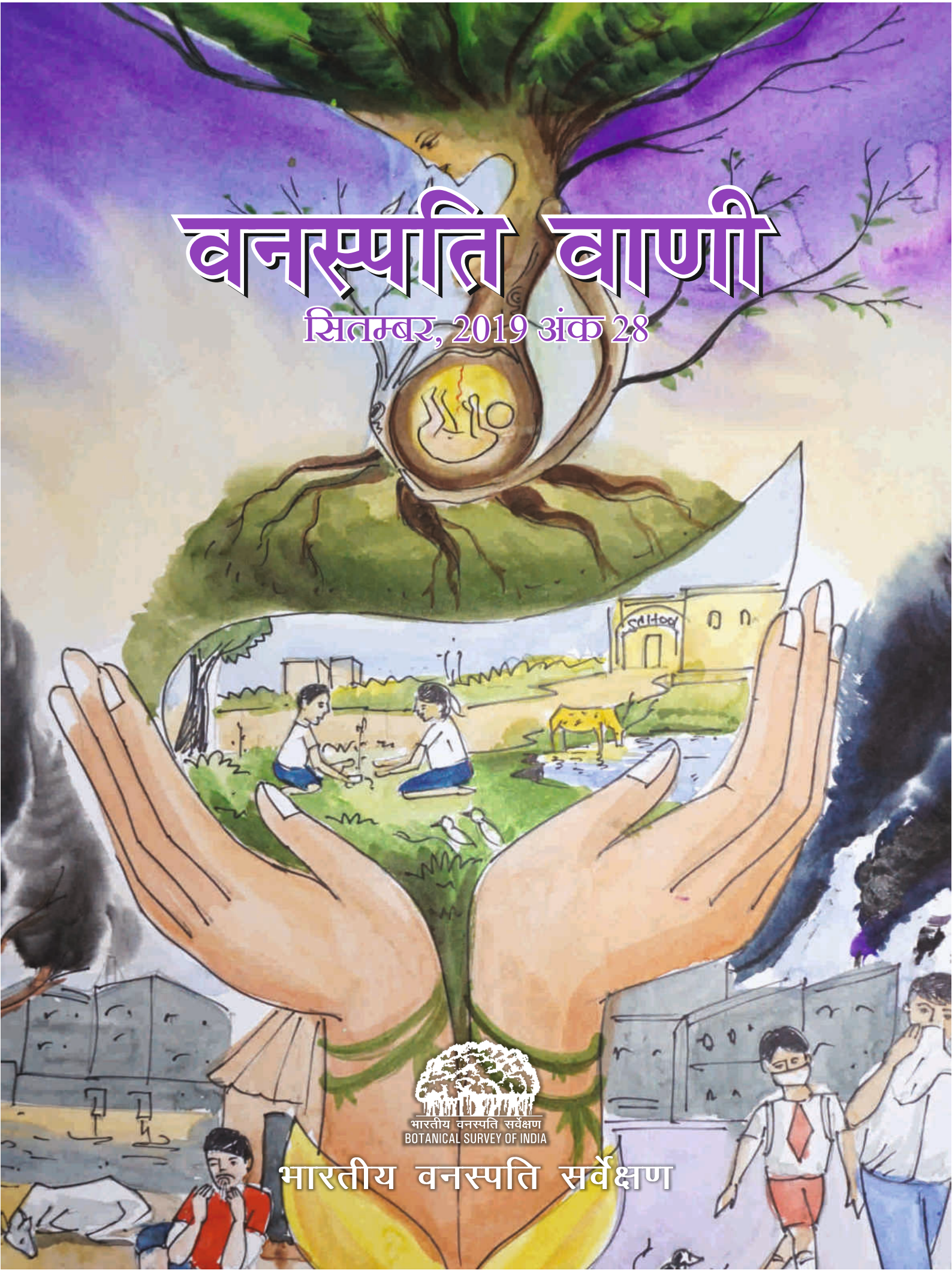

वनस्पति वाणी

सितम्बर, 2019 अंक 28

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून, 2018 के अवसर पर श्री प्रकाश जावड़ेकर माननीय मंत्री पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा प्रकाशित 'वनस्पति अन्वेषण' (प्लान्ट डिस्कवरीज - 2018) का विमोचन करते हुये मंच पर उपस्थित माननीय राज्य मंत्री बाबुल सुप्रियो, श्री सी.के. मिश्रा, सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय एवं अन्य विशिष्ट अतिथिगण।

श्री सी.के. मिश्रा, सचिव एवं श्रीमति मंजू पाण्डेय, संयुक्त सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली, केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा में 7 मार्च, 2019 को डॉ. कैलाश चन्द्रा, निदेशक भारतीय प्राणी सर्वेक्षण एवं डॉ. ए.ए. माओ, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के साथ वनस्पति वाणी अंक 27 का विमोचन करते हुए।

संयुक्त राष्ट्रसंघ जैव विविधता दशक

वनस्पति वाणी

सितम्बर 2019 अंक 28

पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
वृक्षदं पुत्रवत् वृक्षास्तारयन्ति परंत्र च।।

(इह पुष्पिताः फलवन्तः च मानवान् तर्पयन्ति वृक्षाः वृक्षदं पुत्रवत् परत्र च तारयन्ति।)

(भावार्थः फलों और फूलों वाले वृक्ष मनुष्यों को तृप्त करते हैं। वृक्ष देने वाले अर्थात् समाजहित में वृक्षारोपण करने वाले व्यक्ति का परलोक में तारण भी वृक्ष ही करते हैं।)

– (महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय, 58, श्लोक 30)

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

©भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2019

इस प्रकाशन का कोई भी अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/ रिट्रिवल पद्धति में भण्डारण या इलैक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

संरक्षण एवं प्रधान सम्पादक
ए.ए. माओ

सम्पादक मण्डल
एस. एस. दाश
संजय कुमार
एस. एल. मीणा

सहयोग
संजीव कुमार दास एवं कैलाश कुशवाहा

डिजाइन
अंचल विश्वास एवं संजय कुमार

ISSN : 09758-4342

निदेशक , भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉम्पलेक्स, तृतीय एम.एस.ओ. भवन,एफ विंग, डी एफ ब्लॉक, सेक्टर -1, साल्ट लेक सिटी कोलकाता -7000 064 द्वारा विभाग की वेबसाइट पर ई-प्रकाशित।

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रमाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।
- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में राजभाषा हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग दिया है।

ग्रीन गुड डीड

भारत के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा संचालित 'ग्रीन गुड डीड' अभियान की कुछ चुनिन्दा बातों को हम वनस्पति वाणी के इस अंक में इस उद्देश्य के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं कि, हम सभी इनसे प्रेरित होकर अपने जीवन में इनको क्रियान्वित करें। ये छोटी छोटी बातें पर्यावरण को बहुत बड़ा लाभ देने में सक्षम हैं।

पक्षियों के लिए दाना-पानी रखें।

अपने घर में सब्जी का बगीचा या किचन गार्डन लगाएं।

अपने पौधों के लिए कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करें।

पौधों को उपहार में भेट दें।

सूखी पत्तियों को न जलाएं, उलसे कम्पोस्ट निर्माण करें।

कीटनाशकों का उपयोग न करें।

अपने घर की सजावट के लिए फूलों तथा मिट्टी के दीयों का प्रयोग करें।

पूजा सामग्री को तालाब और नदियों में न डालें।

आवरण चित्र

श्रेया मंडल
बाँट्रा बी.बी.पी.सी. बालिका हाई स्कूल, हावड़ा

पार्श्व चित्र

सैकत राय चौधरी
सल्किया हिन्दू स्कूल
हावड़ा

अनुक्रमणिका

वनस्पति विविधता

1. हिमाचल प्रदेश के शीत मरूस्थल में पायी जाने वाली मनमोहक वनस्पतियां: संक्षिप्त प्रतिवेदन — रजनीकांत एवं एस.के. सिंह — 1
2. पश्चिमी हिमालय के प्रमुख औषधीय शाक — संतोष नौटियाल, रजनीकांत, कपिल खर्कवाल एवं संजय उनियाल — 7
3. क्योगनोस्ला अल्पाइन अभयारण्य : एक संक्षिप्त विवरण — सुभोजीत लाहिड़ी, सुधांशु शेखर दाश, विपिन कुमार सिन्हा एवं माधव कुमार झा — 10
4. भारत में कुकरबिटेसी कुल की विविधता-एक अवलोकन — मयंक द्विवेदी, संदीप चौहान, शिवानी मिश्रा एवं ए ए अंसारी — 13
5. अंडमान निकोबार द्वीपसमूह की पादप विविधता: संक्षिप्त परिदृश्य — प्रकाश होरो एवं लाल जी सिंह — 16
6. नागफनी (कैक्ट्स) में अति सूक्ष्मजीवियों जनित रोग एवं उपचार — शिव कुमार — 19

अपुष्पीय वनस्पति

7. बिलगिरी रंगास्वामी मंदिर वन्यजीव अभयारण्य, कर्नाटक की कवक सम्पदा — रश्मि दुबे, श्रेया सेनगुप्ता चॅटर्जी एवं अमित दिवाकर पाण्डेय — 27
8. शैवाल से संबंधित कुछ रोचक वैज्ञानिक तथ्य — एस.के. यादव एवं संजय कुमार — 30
9. कप्पाफाइकस अल्वरेजी की खेती - आजीविका के लिए एक वरदान — पलनीसामी एम. एवं एस. के. यादव — 33

लोक वनस्पति विज्ञान

10. भारतीय परम्परा में पादपों का नामकरण (विशेष आमंत्रित लेख) — धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी — 34
13. उत्तराखण्ड के चम्पावत जिले में पर्णोद्भिद का लोक वानस्पतिक महत्व — पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया — 39
14. *आईपोमिया कार्निया*: बेशरम नाम लेकिन अनेक काम — हरीश सिंह — 43
15. बिहार के पश्चिम चम्पारण जिले की जनजातियों द्वारा खाई जाने वाली कुछ जंगली वनस्पतियाँ — हरीश सिंह, मोनिका मिश्रा एवं पंकज ढोले — 45
16. वान वन्यजीव अभयारण्य के जंगली खाद्य पौधे — प्रियंका इंगळे, सुनीता भोंसले, माधुरी पवार एवं पी. लक्ष्मीनरसिम्हन — 50

चिर परिचित वनस्पति

17. कीटभक्षी *यूट्रीकुलेरिया* वंश और उसका कीट जालतंत्र — अनन्त कुमार — 60
18. हिमालय का संकटग्रस्त औषधीय पौधा: सालम पंजा — भावना जोशी एवं गिरिराज सिंह पंवार — 61
19. छोटा सितारा झाड़ी (*राइटिया एण्टीडायसेन्ट्रिका*) - एक परिचय — ओंकार नाथ मौर्य, कुमार अविनाश भारती एवं आशुतोष कुमार वर्मा — 64

वानस्पतिक यात्रा

20. गोचा-ला ट्रेक: सिक्किम, हिमालय की गोद में एक वानस्पतिक स्वर्ग — सुभोजीत लाहिड़ी, सुधांशु शेखर दाश, विपिन कुमार सिन्हा एवं माधव कुमार झा — 65

अनुक्रमणिका

व्यक्तित्व

21.	प्रो. एन. आनंद (1947-2018): प्रख्यात शैवालविद्	आर. के. गुप्ता, सुदीप्त कुमार दास एवं एस. नागराज	70

तकनीकी/ समसामयिक परिदृश्य

22.	प्रकृति की अदभुत् फाइबोनासी अंक व्यवस्था	सौरभ सचान	72
23.	वैश्विक वर्गीकरण पहल [ग्लोबल टैक्सोनोमी इनिशिएटिव - जीटीआई]	प्रशांत केशव पुसालकर एवं पी. लक्ष्मीनरसिम्हन	74
24.	प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय और जैव विविधता	मानस भौमिक एवं सुरेन्द्र कुमार शर्मा	67
25.	एकल स्थानिक एवं संकटग्रस्त प्रजाति *ट्राइकोलेपिस रोयली* का ऊतक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षण	गिरिराज सिंह पंवार, भावना जोशी एवं आकृति भंडारी	82

काव्यांजली

26.	ऑर्किड	जीवन सिंह जलाल	86
27.	प्रकृति	आर. के. गुप्ता	87
28.	जीवन के साथी पेड़-पौधे	रजनीकांत	87
29.	हिन्दी तुम कब मुस्कुराओगी	सौरभ सचान	88
30.	वनस्पतियाँ जीवन का आधार	प्रतिभा गुप्ता	89
31.	स्वच्छ हो पर्यावरण हमारा	संजय उनियाल	89
32.	सुन लो मेरी पुकार	चंद्र कुमार शर्मा	90
33.	मैं वसुधा धैर्य की मूरत	कु. प्रिंशा	91
34.	फूल देई	कु. सीमा	91

पटाक्षेप

35.	पर्यावरण समाचार 2019	संजीव कुमार दास	92
36.	भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की राजभाषा प्रगति आख्या	राजभाषा अनुभाग	94
37.	लेखकों के लिए निर्देश	राजभाषा अनुभाग / प्रकाशन अनुभाग	95
38.	राजभाषा हिंदी से संबंधित विविध जानकारियां	राजभाषा अनुभाग	96
39.	गतिविधियां (सचित्र)	प्रकाशन अनुभाग	98

वनस्पति वाणी अंक 28: 01-06 (2019)
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

हिमाचल प्रदेश के शीत मरूस्थल में पायी जाने वाली मनमोहक वनस्पतियां: संक्षिप्त प्रतिवेदन

रजनीकांत एवं एस.के. सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

विश्व की सर्वाधिक ऊँचाई वाली हिमाच्छादित पर्वतमाला हिमालय का नाम संस्कृत के दो शब्दों से मिलकर बना है हिम तथा आलय, जिसका शाब्दिक अर्थ है बर्फ का घर। यह ध्रुवीय क्षेत्रों के बाद पृथ्वी पर सबसे बड़ा बर्फ का आवरण वाला एक पर्वत तंत्र है, जो भारतीय उपमहाद्वीप को मध्य एशिया और तिब्बत से अलग करता है। यह पर्वत तंत्र मुख्य रूप से तीन समानांतर श्रेणियों ग्रेट हिमालय, मध्य हिमालय और शिवालिक श्रेणियों,से मिलकर बना है, जो पश्चिम से लेकर पूर्व तक एक चाप की आकृति में लगभग 2400 किमी की लम्बाई में फैली है। इस चाप का उभार दक्षिण की ओर अर्थात उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्र की ओर है और केन्द्र तिब्बत के पठार की ओर है। इन तीन मुख्य श्रेणियों के अलावा चौथी और सबसे उत्तरी श्रेणी को परा हिमालय या ट्रांस हिमालय कहा जाता है, जिसमें काराकोरम और कैलाश श्रेणियां शामिल है। हिमालय पर्वत पांच देशों भारत, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान और चीन में विस्तारित हैं।

इसी हिमालय की गोद में बसे हिमाचल प्रदेश जिसका कुल क्षेत्रफल 55673 वर्ग किमी., के 12 जिले हैं, 12 जिलों में से सबसे बड़ा जिला लाहौल-स्पिति है, जो 12210 वर्ग किमी. क्षेत्रफल में फैला हुआ है। आर्थिक व भौगोलिक दृष्टि से यह जिला बहुत ही अलग है, यह दो भागों में विभाजित है लाहौल एवं स्पिति। लाहौल और स्पिति के दोनों भाग कुंजम दर्रा (4591 मीटर) से विभाजित होते हैं। जब यह क्षेत्र पूरे हिमवरण में ढक जाता है तो यह छः माह के लिए शोष विश्व से कट जाता है। लाहौल-स्पिति के पश्चिमी भाग से चिनाब नदी एक संकरी घाटी से निकलती है। चिनाब नदी दो सहायक नदियों चन्द्र व भागा से मिलकर बनी है। चन्द्र-भागा तांदी नामक स्थान पर मिलकर चिनाब नदी का निर्माण करती है। चन्द्रा नदी बारालाचा दर्रे के हिमनद चन्द्रताल से निकलती है, तथा भागा नदी सूरज ताल झील से निकल कर प्रवाहित होती है।

चन्द्रताल व सूरजताल मुख्यतः ट्रांस हिमालय में आते हैं, ट्रांस हिमालय का निर्माण हिमालय से भी पहले हो चुका था। ट्रांस हिमालय अधिक ऊंचाई होने के कारण वर्ष भर हिमाच्छदित रहता है और जिसके कारण इस पर वनस्पतियां कम पाई जाती हैं। शीत मरूस्थल हिमाचल प्रदेश का बहुत ही अद्भुत भाग है इसमें बहुत सी वनस्पतियां पाई जाती हैं जो मरूभूमि को सुशोभित करती हैं। यहां पर मुख्यतः छोटी-छोटी वनस्पतियां मिलती हैं जिनमें छोटे पत्ते एवं कांटेदार टहनियां होती हैं। चैंपियन और सेठ के अनुसार शीत मरूस्थल की वनस्पतियों को तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है (1) अल्पाइन चारागाह, (2) शुष्क अल्पाइन स्क्रब एवं (3) बौना जुनिपर स्क्रब।

शीत मरूस्थल में मुख्यतः सूखी अल्पाइन वनस्पतियां पायी जाती हैं। सूखी वनस्पतियां कम वर्षा के कारण होती है, और पूरा क्षेत्र वर्ष में छः मास तक बर्फ से ढ़का रहता है। वनों का घनत्व शीत मरूस्थल में बहुत कम है। लकड़ी वाली झाड़ियां एवं पेड़ जो नीचे वाले क्षेत्रों में लगाए गए हैं, उनका चारे के लिए एवं लकड़ी जलाने के लिए महत्व है, छोटे पेड़ों में *सैलिक्स इलैग्नेस, सैलिक्स अल्बा, सैलिक्स फ्रैगिलिस, सैलिक्स सिरोफाइला*, *पॉपुलस अल्बवा, पॉपुलस यूफैटरिका, पॉपुलस सिलयाटा, पॉपुलस अंगस्टिफोलिया, जूनिपेरस मैक्रोपोड़ा, जूनिपेरस पॉलिकारपस, जूनिपेरस कॉमिनिस*, *आर्टिमिसिया* की जातियां, *माइरिकेरिया ब्रेक्टियाटा*, *हिप्पोफि रैम्हनोटाइडिस*, *टैमेरिक्स गैलिका, इलैक्नस अंगस्टिफोलिया, कैरागेना पाइग्मिया* आदि वनस्पतियां शुष्क रेगिस्तान में पाई जाती है।

यह शीत मरूस्थल इतनी ऊंचाई पर होने के बावजूद भी एक सुन्दर एवं रमणीय पारितंत्र हैं। शुष्क एवं ठंडी जगह में होने के कारण इसे भंगुर पारितंत्र में रखा जाता है। शीत मरूस्थल में अनेक प्रकार की शोभनीय वनस्पतियां पाई जाती हैं, जैसे कि *पोटेन्टिला* की अनेक जातियां, *स्ट्रागेलस* की जातियां, *रोडिओला* की जातियां *इफेड्रा* की बड़ी-बड़ी झाड़ियां, *कोरिडेलिस* की जातियां, *अरनेरिया* की जातियां यहां के पर्यावरण को मनमोहक बनाती हैं। ऐसी ही कुछ वनस्पतियों को नीचे दी गई सूची में सूचीबद्ध किया गया है, जो कि शीत मरूस्थल के पर्यावरण को अत्यन्त शोभनीय एवं सुन्दर बनाती हैं।

क्रंस.	वानस्पतिक नाम	कुल	प्रकार	व्याप्ति ऊंचाई
1.	*एकोनिटम हेटरोफाइलम*	रेननकुलेसी	शाक	3500-4500 मी
2.	*एकोनिटम रोटन्ड्रिफोलियम*	रेननकुलेसी	शाक	3600-4600 मी
3.	*एनिमोन रिवुलेरिस*	रेननकुलेसी	शाक	3300-4500 मी
4.	*एकुलिजिया फ्रेगरेन्स*	रेननकुलेसी	शाक	3000-4200 मी
5.	*डेलफिनियम ब्रुनोनियम*	रेननकुलेसी	शाक	4000-4400 मी
6.	*रेननकुलस हिरटेलस*	रेननकुलेसी	शाक	3900-4500 मी
7.	*थैलिकट्रम फोइटिड़ियम*	रेननकुलेसी	शाक	3500-4000 मी
8.	*ट्रोलियस एक्युलीस*	रेननकुलेसी	शाक	3200-4400 मी
9.	*मैकोनोप्सिस एकुलाटा*	पैपेवरेसी	शाक	3500-4500 मी
10.	*कोरिडैलिस गोवानियाना*	फ्युमेरिकेसी	शाक	3600-4000 मी
11.	*कोरिडैलिस स्ट्रिक्टा*	फ्युमेरिकेसी	शाक	3700-4200 मी
12.	*अरेबिडोपसिस हिमलिका*	ब्रासिकेसी	शाक	2000-4300 मी
13.	*अरैबिस एम्पलैक्सिकोलिस*	ब्रासिकेसी	शाक	2000-4300 मी
14.	*अरैबिस नोवा*	ब्रासिकेसी	शाक	2000-4200 मी
15.	*ब्रासिका रॉपा*	ब्रासिकेसी	शाक	2000-5000 मी
16.	*कैपसेला ब्रुसा-पेसटोरिस*	ब्रासिकेसी	शाक	2000-4000 मी
17.	*मथीओला फ्लावा*	ब्रासिकेसी	शाक	3000-4000 मी
18.	*नोसट्रोपियम ओफिसनेलै*	ब्रासिकेसी	शाक	3300-4200 मी
19.	*पाइरा नुडीकॉलिस*	ब्रासिकेसी	शाक	3500-4200 मी
20.	*कैपेरिस सपाइनोसा*	कैपरेसी	झाड़ी	3000-4500 मी
21.	*वायोला कुंवारेनसीस*	वाइलोकेसी	शाक	2800-4400 मी
22.	*अरेनिया फेसटुकोएड़िस*	कैरोफाइलेसी	शाक	3300-4500 मी
23.	*डाइएन्थेस ओरिएन्टलिस*	कैरोफाइलेसी	शाक	4000-4500 मी
24.	*साइलिन एजबरडाई*	कैरोफाइलेसी	शाक	3200-4400 मी
25.	*साइलिन इंडिका*	कैरोफाइलेसी	शाक	3200-4400 मी
26.	*माइरिकेरिया एल्बिफ्लोरा*	टेमारिएसी	शाक	3400-4000 मी
27.	*मालवा साइलवेस्ट्रिस*	मालवेसी	शाक	4000 मी
28.	*जिरेनियम नेपालेंसिस*	जिरेनेसी	शाक	4000 मी
29.	*इंपोशीयंस सलकाटा*	बालसामिनेसी	शाक	3400-4000 मी
30.	*इम्पेशेसंस थामसोनाई*	बालसामिनेसी	शाक	3700-4200 मी
31.	*रेमनस प्रोस्टाटा*	रैमनेसी	शाक	3800-4500 मी
32.	*एस्ट्रागेलस कोन्डोलेन्स*	फैबेसी	झाड़ी	3600-4200 मी
33.	*एस्ट्रागेलस क्लोरोस्टेकिस*	फैबेसी	झाड़ी	3500-4000 मी
34.	*एस्ट्रागेलस हिमालयेन्स*	फैबेसी	झाड़ी	3700-4200 मी
35.	*एस्ट्रागेलस मुनरोई*	फैबेसी	झाड़ी	3600-4400 मी

क्रंस.	वानस्पतिक नाम	कुल	प्रकार	व्याप्ति ऊंचाई
36.	*सिसर माइक्रोफाइलम*	फैबेसी	शाक	3700-4500 मी
37.	*डेसमोडियम एलिगेन्स*	फैबेसी	झाड़ी	2500-4000 मी
38.	*ओक्सीट्रोपिस ह्युमीफुसा*	फैबेसी	शाक	3200-4200 मी
39.	*ओक्सीट्रोपिस माइक्रोफाइला*	फैबेसी	शाक	3300-4200 मी
40.	*थर्मोपसिस इनफलाटा*	फैबेसी	शाक	3200-4400 मी
41.	*ट्राइगोनेला इमोडी*	फैबेसी	शाक	3200-4000 मी
42.	*ट्राइगोनेला पुबिसेन्स*	फैबेसी	शाक	3400-4000 मी
43.	*कोटोनेस्टर गिलगीटेन्सिस*	रोजेसी	शाक	3000-4500 मी
44.	*पोटेन्टिला एग्रोफाइला*	रोजेसी	शाक	3200-4600 मी
45.	*पोटेन्टिला एट्रिसन्गयोना*	रोजेसी	शाक	3500-4500 मी
46.	*रोजा हुकरेयाना*	रोजेसी	झाड़ी	3400-4000 मी
47.	*रोजा वेबियाना*	रोजेसी	झाड़ी	3400-4000 मी
48.	*बर्जिनिया स्ट्रेचियाई*	सेक्सीफ्रेगेसी	शाक	3000-4000 मी
49.	*सेक्सीफ्रेगा पैलीड़ा*	सेक्सीफ्रेगेसी	शाक	3000-4200 मी
50.	*राइबस ओरेन्टिले*	ग्रोसुलेरिएसी	झाड़ी	3000-4000 मी
51.	*रोडिओला बपल्युरोओडिस*	क्रैसुलेसी	शाक	3000-4400 मी
52.	*रोडिओला हिटरोडोन्टा*	क्रैसुलेसी	शाक	3200-4400 मी
53.	*रोडियोला इम्ब्रिकाटा*	क्रैसुलेसी	शाक	3200-4400 मी
54.	*रोड़ियोला तिब्बेतिका*	क्रैसुलेसी	शाक	3500-4400 मी
55.	*रोसुलेरिया अल्पेस्ट्रिस*	क्रैसुलेसी	शाक	3400-4500 मी
56.	*इपिलोबियम लैटिफोलियम*	ओनाग्रेसी	शाक	3700-4500 मी
57.	*इपिलोबियम अंगस्टिफोलियम*	ओनाग्रेसी	शाक	3500-4400 मी
58.	*ओइनोथेरा रोजिया*	ओनाग्रेसी	शाक	3000-4400 मी
59.	*फेरूला जस्कियाना*	एपीऐसी	शाक	3000-4000 मी
60.	*पल्युरोस्पर्मम कैनडोली*	एपीऐसी	शाक	3000-4200 मी
61.	*सेलीनियम वालिचियानम*	एपीऐसी	शाक	3500-4000 मी
62.	*लॉनिसेरा एस्परीफोलिया*	कैपरीफोलिएसी	झाड़ी	3000-4000 मी
63.	*लॉनिसेरा स्पाइनोसा*	कैपरीफोलिएसी	झाड़ी	3000-4000 मी
64.	*रूबिया कोर्डिफोलिया*	रूबिऐसी	शाक	2800-4000 मी
65.	*वेलेरियाना हिमालियाना*	वेलेरीनेसी	शाक	3000-4000 मी
66.	*मोरिना लांगिफोलिया*	मोरिनेसी	शाक	3200-4400 मी
67.	*आर्टिमिसिया जैमिलिनी*	एस्ट्रेसी	शाक	3300-4000 मी
68.	*एस्टर फ्लैसीड़स*	एस्ट्रेसी	शाक	3000-4000 मी
69.	*कराईजेन्थेमम पाइरिथ्रोईडिस*	एस्ट्रेसी	शाक	3000-4200 मी
70.	*क्रिमैनथोडियम आरकिनोइडिस*	एस्ट्रेसी	शाक	3000-4000 मी
71.	*एरिजिरॉन यूनिफ्लोरम*	एस्ट्रेसी	शाक	3200-4000 मी

1. *डेक्टाइलोराइजा हथाजारिया*, 2. *इपिलोबियम अंगस्टिफोलियम*, 3. *हकेलिया अनसीनाटा*, 4. *इंपोशियंस सलकाटा*, 5. *मैकोनोप्सिस एकुलाटा*, 6. *रियूम स्पैसिफॉर्मिस*, 7. *रोजा वेबियाना*, 8. *ससुरिया ओब्वेलाटा*

क्रंस.	वानस्पतिक नाम	कुल	प्रकार	व्याप्ति ऊंचाई
72.	*जुरिनिया मैक्रोसिफेला*	एस्ट्रेसी	शाक	3800-4400 मी
73.	*लिनोपोड़ियम एल्पिनम*	एस्ट्रेसी	शाक	3500-4500 मी
74.	*ससुरिया ओब्वेलाटा*	एस्ट्रेसी	शाक	3600-4600 मी
75.	*वालधिनिया ग्लैबरा*	एस्ट्रेसी	शाक	3600-4600 मी
76.	*कैम्पानुला एरिस्टाटा*	कैम्पानुलेसी	शाक	3800-4200 मी
77.	*कोडानोप्सिस क्लेमाटिडिया*	कैम्पानुलेसी	शाक	3400-4300 मी
78.	*केसियोप फैस्टीजियाटा*	इरिकेसी	शाक	3300-4600 मी
79.	*रोड़ोडेन्ड्रान एन्थेपोगॉन*	इरिकेसी	शाक	3300-4300 मी
80.	*प्राइमुला मेक्रोफाइला*	प्रिमुलेसी	शाक	3200-4000 मी
81.	*प्राइमुला सरमनटोसा*	प्रिमुलेसी	शाक	3300-4400 मी
82.	*जैशियाना कोरोनाटा*	जैंसिनेसी	शाक	3600-4500 मी
83.	*जैशियाना ट्यूबीफ्लोरा*	जैंसिनेसी	शाक	3800-4500 मी
84.	*जैशियाना टेमैला*	जैंसिनेसी	शाक	3600-4400 मी
85.	*स्वरशिया सिलियाटा*	जैंसिनेसी	शाक	3600-4400 मी
86.	*पॉलीमोनियम केयिरूलियम*	पॉलीमानीऐसी	शाक	3500-4500 मी
87.	*अरनिबिया बैन्थमाई*	बोराजिनेसी	शाक	3700-4200 मी
88.	*अरनिबिया युक्रोमा*	बोराजिनेसी	शाक	3700-4300 मी
89.	*अरनिबिया गटाटा*	बोराजिनेसी	शाक	3600-4300 मी
90.	*साइनोग्लोसम लेन्सियोलेटम*	बोराजिनेसी	शाक	3000-4000 मी
91.	*हकेलिया अनसीनाटा*	बोराजिनेसी	शाक	3500-4000 मी
92.	*ओनोसमा हिस्पिड्यिम*	बोराजिनेसी	शाक	3400-4000 मी
93.	*कोनवोल्सुस आरवेंसिस*	कोनवाल्बुलेसी	शाक	3300-4000 मी
94.	*हायोसायमस नाइजर*	सोलेनेसी	शाक	3300-4000 मी
95.	*पैडिकुलेरिस बाइकोरूनुटा*	स्क्रोफुलेरेसी	शाक	3500-4200 मी
96.	*पैडिकुलेरिस पक्टिनाटा*	स्क्रोफुलेरेसी	शाक	3000-4200 मी
97.	*पैडिकुलेरिस पंक्टाटा*	स्क्रोफुलेरेसी	शाक	3300-4200 मी
98.	*पिक्रोराइजा कुरूआ*	स्क्रोफुलेरेसी	शाक	3400-4400 मी
99.	*स्क्रोफुलेरिया डिक्मपोसिटा*	स्क्रोफुलेरेसी	शाक	3200-3800 मी
100.	*ओराबंकी अल्बा*	ओराबांकेसी	शाक	3400-4000 मी
101.	*क्लिनोपोडियम अम्बरोसम*	लैमिएसी	शाक	3200-3900 मी
102.	*मैन्था लांगिफोलियम*	लैमिएसी	शाक	3400-3900 मी
103.	*ओरिगैनम बुलगैरे*	लैमिएसी	शाक	3000-4000 मी
104.	*थाइमस लिनिएरिस*	लैमिएसी	शाक	3400-4000 मी

क्रंस.	वानस्पतिक नाम	कुल	प्रकार	व्याप्ति ऊंचाई
105.	*फ्लैटैगो ड़िपरैसा*	लैमिएसी	शाक	3300-4000 मी
106.	*साइथुला टोमेनटोसा*	अमरैन्थेसी	शाक	3200-4000 मी
107.	*बिस्ट्रोटा एफिनिस*	पॉलिगोनेसी	शाक	3400-4000 मी
108.	*बिस्ट्रोटा विविपेरा*	पॉलिगोनेसी	शाक	3500-4000 मी
109.	*ओक्सेरिया डिगयाना*	पॉलिगोनेसी	शाक	3300-4200 मी
110.	*पर्सिकेरिया केपिटाटा*	पॉलिगोनेसी	शाक	3100-4000 मी
111.	*रियूम स्पैसिफॉर्मिस*	पॉलिगोनेसी	शाक	3100-3900 मी
112.	*रियूम वैबियाना*	पॉलिगोनेसी	शाक	3200-4400 मी
113.	*रूमेक्स एसिटोसा*	पॉलिगोनेसी	शाक	3600-4500 मी
114.	*हिप्पोफी रम्बोइड़िसी*	इलैग्नेसी	झाड़ी	3200-4000 मी
115.	*कैनाबिस स्टाइवा*	कैनाबेसी	शाक	3000-4000 मी
116.	*पॉपुलस सिलियाटा*	सेलेकेसी	वृक्ष	3300-4000 मी
117.	*सेलिक्स डेंटिकुलाटा*	सेलेकेसी	वृक्ष	3300-4400 मी
118.	*सेलिक्स वॉलिचियाना*	सेलेकेसी	झाड़ी	3000-4000 मी
119.	*डेक्टाइलोराइजा हथाजरिया*	ओरिकिडेसी	शाक	3300-4450 मी
120.	*रासकोइया अल्पिना*	जिंजिबरेसी	शाक	3000-4000 मी
121.	*आइरिस इंसटाटा*	इरिडेसी	शाक	3000-4000 मी
122.	*एरिसिमा जैकिमोन्टाई*	ऐरेसी	शाक	3100-3500 मी
123.	*कैरेक्स स्टेनोफाइला*	साइपरेसी	शाक	3500-4400 मी
124.	*एग्रौस्टिस पिलोसुला*	पोएसी	शाक	3500-4000 मी
125.	*ब्रोमस देन्धोनाई*	पोएसी	शाक	3800 मी
126.	*क्राइसोपोगोन ग्राइलस*	पोएसी	शाक	4200 मी
127.	*इलाइमस मुटाबिलिस*	पोएसी	शाक	4000 मी

यह सब वनस्पतियां हिमाचल प्रदेश में स्थित शीत मरूस्थल को सुशोभित करती हैं। ये वनस्पतियां शीत मरूस्थल के पारितंत्र का अभिन्न और मुलफत अंग हैं और इसका प्राकृतिक संतुलन बनाए रखती हैं। इन सब वनस्पतियों के अलावा कई अन्य वनस्पतियां भी इस शीत मरुस्थल पायी जाती हैं।

पेड़ पौधे फल फूल हैं प्रकृति के श्रृंगार,
मानव का कर्तव्य है कि करे इनसे प्यार,
बागों में आती रहे बहार,
और चारो ओर महकती रहे,
सुगन्धित बयार।

पश्चिमी हिमालय के प्रमुख औषधीय शाक

संतोष नौटियाल, रजनीकांत, कपिल खर्कवाल एवं संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

हमारा देश औषधीय पादप संपदा एवं पौराणिक चिकित्सा पद्धति में अग्रनीय स्थान रखता है, यहां पर ऋषि-मुनियों ने वनों में रहकर अनेकों तरह के औषधीय गुणों वाले पादपों का उपयोग विभिन्न व्याधियों के उपचार में किया व इनको संरक्षण प्रदान कर आर्युर्वेद, सिद्ध औषधि एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की नींव रखी।

पश्चिमी हिमालय औषधीय पादप संपदा का प्रमुख स्थान है एवं वन्य जैव विविधता में भी अपनी विशेष पहचान रखता है। यह क्षेत्र भारत में उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर राज्यों में 1500-5000 मी. की उंचाई तक विस्तारित है। हिमालयी राज्यों में मुख्यतः सदाबहार वन, शंकुधारी वन, बुग्याल, ताल, विभिन्न वनस्पतियां आकर्षण का केंद्र है। उच्च हिमालयी स्थानों में तापमान गर्मियों मे 15°-18° एवं सर्दियों में 0° सेल्सीयस व इससे भी कम हो जाता है व चोटियां बर्फ से ढकी रहती है, यहां पर उष्णकटिबंधीय शीतोष्ण समशीतोष्ण व उष्ण प्रकार की वनस्पतियां पायी जाती हैं।

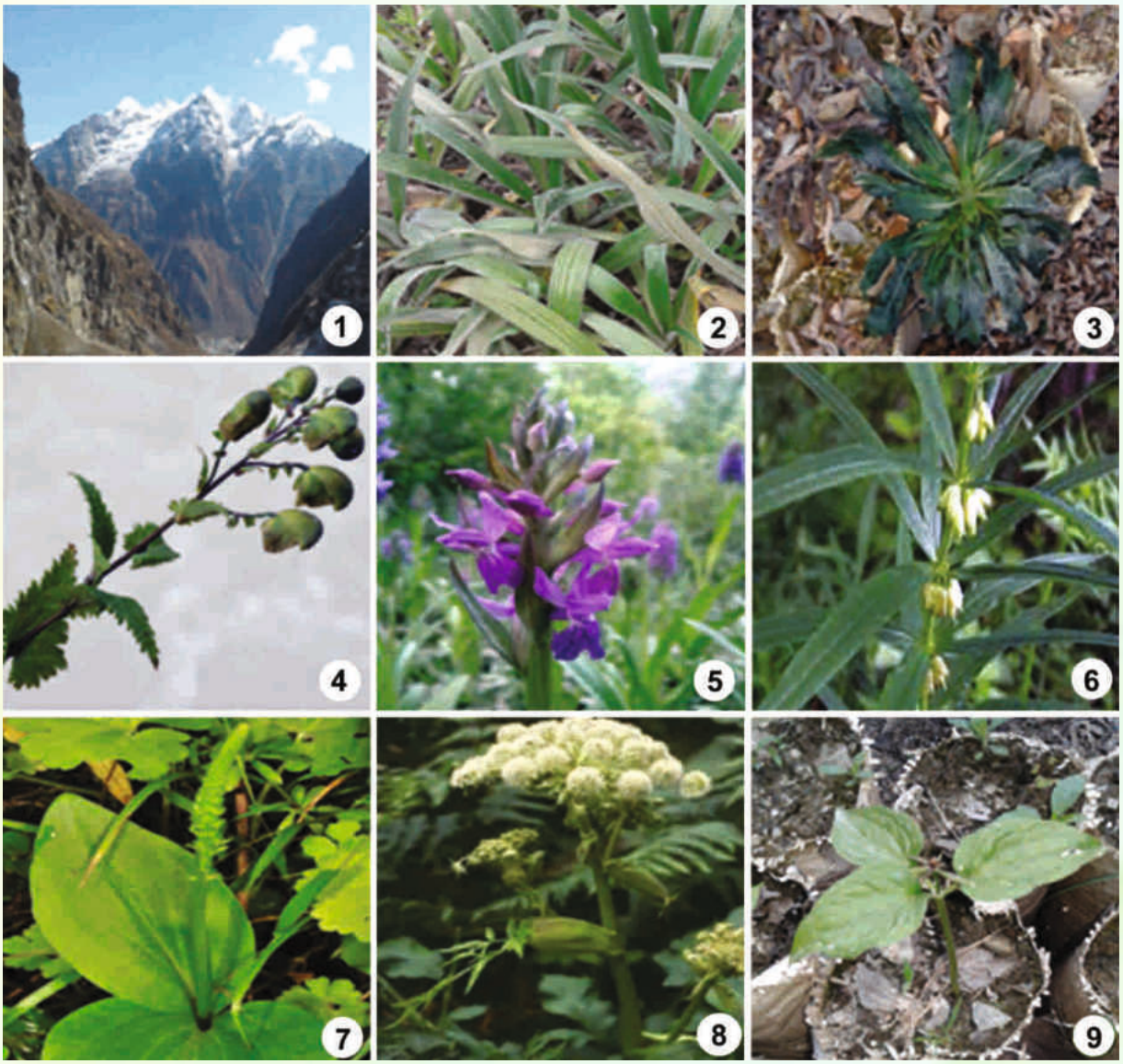

1. हिमालय का दृश्य, 2. *अरनीबिया यूक्रोमा*, 3. *पिक्रोराइजा कुरू*, 4. *एकोनिटम हेट्रोफाइलम*, 5. *डेक्टेलोराइजा हेटाजीरिया*, 6. *पोलिगोनेटम वर्टिसिलेटम*, 7. *मेलेक्सिस मसिफेरा*, 8. *ऐन्जिलिका ग्लोका*, 9. *ट्रिलिअम गोवानिऐनम*।

हिमालय से काफी बड़ी आबादी का जीवन जुड़ा है इसके ढलुआ क्षेत्रों में सीढ़ीदार खेती सामान्यतः प्रचलित है एवं मानसून का समय जून-सितम्बर तक लगभग रहता है संक्षेप में हिमालय भारतीय परम्परा, आस्था, कला और संस्कृति, साधना के अप्रतिम केन्द्र के रूप में भी प्रतिष्ठित है।

विभिन्न स्थानों में भ्रमण एवं सर्वेक्षण के दौरान कुछ उच्च औषधीय गुणों वाले शाकों का ज्ञान प्राप्त हुआ व इनके आवास परम्परागत उपयोग का अवलोकन किया जो कि निम्नलिखित हैं -

क्र.स.	वानस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	उपयोग
1	*अरनीबिया यूक्रोमा*	बोराजिनेसी	रतन जोत	जड़ को पीसकर सरसों के तेल में मिश्रित कर आर्थराइटिस में उपयोग किया जाता है
2	*पिकोराइजा कुरू*	स्क्रोफुलरेसी	कुटकी	जड़ को सुखाकर गर्म पानी में मिलाकर पीने से पीलिया में लाभ मिलता है
3	*एकोनिटम हेट्रोफाइलम*	रेननकुलेसी	अतीश	जड़ को पीसकर पानी मे नियमित पीने से बवासीर बुखार, कृमि नाशक उदर रोगों में लाभकारी
4	*डेक्टेलोराइजा हेटाजीरिया*	आर्किडेसी	सालमपंजा	प्रकंद को सुखाकर खाने से यह शक्तिवर्धक एवं खांसी में लाभकारी
5	*पोलिगोनेटम वर्टिसिलेटम*	लिलिऐसी	सालममिश्री	यह मधुर रस औषधी है इसके कंद बलदायक धातुवर्धक व क्षय रोगों में लाभकारी
6	*मेलेक्सिस मसिफेरा*	आर्किडेसी	ऋषभक	इस पादप की जड़ें च्यवनप्राश का एक मुख्य तत्व है यह प्रतिरोधक क्षमता बढाता है, व शक्ति वर्धक है
7	*ऐंजिलिका ग्लोका*	ऐपिऐसी	च्यूरा	जड़ों को पीसकर चूर्ण बनाने के बाद खाने से व लेपन से त्वचा संबधी रोग, विषहारी, ज्वरनाशक में लाभ
8	*कैरम कारवी*	ऐपिऐसी	कालाजीरा	बीजों को सुखाकर खाने से पाचन तंत्र, मूत्ररोग, बुखार एवं मधुमेह में लाभकारी
9	*ट्रिलियम गोवानिऐनम*	मेलनथिऐसी	नागछत्री	प्रकंद को उपयोग में लाने पर यह रजोचक्र, लैंगिक समस्याओं, कैंसर के उपचार में लाभप्रद
10	*फ्रिटिलेरिया रॉयली*	लिलिऐसी	काकोली	इस पादप के कंद का आयुर्वेद एवं होम्योपैथ में विशेष स्थान है जिससे च्यवनप्राश महात्रिफला आदि बनाये जाते है
11	*ऐकोनिटम बल्बोफोराइ*	रेननकुलेसी	बोवा	प्रकंद को सुखाकर खाने से आर्थराइटिस मे लाभ
12	*अर्निबिया बैंथेमाई*	बोराजिनेसी	भूतकेश	जड़ व पत्तियां बुखार, गले के रोग व हृदय संबंधी रोगों में लाभप्रद
13	*डेलफिनियम डेनुडटम*	रेननकुलेसी	निरबिसी	पत्तियां पोषण में व आंत संबंधी रोग में उपयोगी

क्र.स.	वानस्पतिक नाम	कुल	स्थानीय नाम	उपयोग
14	*पोटेंटिला फलगेन्स*	रोजेसी	वज्रदन्ती	जड़ पायरिया के उपचार में
15	*कस्कुटा रिफलेक्सा*	कान्वावुलेसी	अमरबेल	नेत्र रोग बालों का झड़ना व सरदर्द में लाभकारी
16	*वर्बेस्कम थेप्सस*	स्क्रोफुलरेसी	अकलवीर	पत्तियां ब्रोंकाइटिस के उपचार में लाभप्रद
17	*ऐकलिप्टा प्रोस्टेटा*	ऐस्टेरेसी	महाभृंगराज	बालों के पोषण त्वचा संबंधी रोग व यकृत के लिए लाभकारी
18	*वेलिरियाना जटामांसी*	वेलिरिनेसी	सुमाया	जड़ें मिर्गी व ज्वरनाशी में उपयोगी
19	*रूबिया कोर्डिफोलिया*	रूबिएसी	मजेठी	रक्तचाप नियत्रंण, त्वचा व मूत्र संबंधी उपचार में
20	*प्लम्बेगो जिलेनिका*	प्लेम्बोजिनेसी	चित्रक	जड़ें रह्मूमेटिज्म आर्थराइटिस में उपयोगी

उपरोक्त सभी हिमालयी उच्च औषधीय गुणों वाली शाक जिनका उपयोग आयुर्वेद, होम्योपेथी व घरेलू चिकित्सा में किया जा रहा है एवं इनकी मांग भी अधिक है इनमें से लगभग सालमपंजा का बाजार मूल्य रू 20,000/- प्रति किग्रा. है और सालममिश्री रू 22,000/- प्रति किग्रा है इसके साथ-साथ नागछत्री रू 12,000/- प्रति किग्रा व कालाजीरा रू 8,000/- प्रति किग्रा है। बढती हुयी आबादी व रोजगार की दृष्टि से इनसे अनेक व्यवसाय जुड़े हुये हैं जिनके फलस्वरूप इन पादपों का दोहन हो रहा है व सुदूरवर्ती गांवों की आर्थिकी इनसे जुड़ी हुई है, पादप ऊनक संवर्धन, मल्टीप्लीकेशन, आदि नवीन तकनीकों के माध्यम से इन सभी औषधीय पादपों के कृषिकरण को बड़ावा देकर, प्राकृतिक रुप से पाये जाने वाली पादप संपदा के निदोहन से बचा जा सकता है।

वर्तमान समय में इनका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है एवं इनसे जुडे रोजगार को अन्य वैकल्पिक रोजगार में बदलने का संदेश देना है। सुदूरवर्ती गांवों में इनके बचाव व नियंत्रित दोहन पर जोर देना है व जागरूकता भी आवश्यक है।

चलो चलें नियमित करें हम वृक्षारोपण,
अपनायें तरीका नया संरक्षण का।
हरी-भरी हो जाये यह सुन्दर धरती,
स्वस्थ और सुखी रह पायें हम सभी।।

क्योगनोस्ला अल्पाइन अभयारण्य : एक संक्षिप्त विवरण

सुभोजीत लाहिड़ी, सुधांशु शेखर दाश, विपिन कुमार सिन्हा एवं माधव कुमार झा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

भारतीय हिमालयी क्षेत्र में अंतराष्ट्रीय सीमाओं से सटा और भारत की सामरिक दृष्टि के साथ-साथ जैव विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिक्किम, एक छोटा हिमालयी राज्य है। यह राज्य हिमालय के सबसे ऊंचे पर्वत पारिस्थितिक तंत्रों में से एक होने के साथ ही प्राकृतिक और सांस्कृतिक तौर पर भी महत्वपूर्ण है। इस राज्य ने न केवल जैव विविधता पर आधारित अपनी ग्रामीण आजीविका को बनाए रखा है, अपितु पारिस्थितिकीय और अन्य सतत विकास के दृष्टिकोणों के माध्यम से आर्थिक विकास के लिए अपनी जबरदस्त क्षमता को भी प्रदर्शित किया है। इसी राज्य के उच्च हिमालयी क्षेत्र में स्थित है, क्योगनोस्ला अल्पाइन अभयारण्य, जो सिक्किम में जैव विविधता पर कार्य करने वाले प्रकृति विज्ञानियों और पारिस्थितिकीविदों हेतु एक समृद्ध जैव विविधता वाला क्षेत्र है, साहसिक गतिविधियों जैसे पर्वतारोहण, ट्रैकिंग और हाइकिंग के लिये असीम सम्भावनों को लिये यह क्षेत्र अपने अति दुर्गम होने के कारण पर्यटकों के बीच इतना प्रसिद्ध नहीं है।

क्योगनोस्ला अल्पाइन अभयारण्य सिक्किम की राजधानी गंगटोक से 31 किमी की दूरी पर 27°22'33" उत्तरी अक्षांश, 88°44'3" पूर्वी अक्षांश के मध्य 31 वर्ग किमी से अधिक क्षेत्र में विस्तृत है। यह सिक्किम के पूर्वी जिले में 3200 मीटर से 4500 मीटर के बीच यह नाथू-ला रोड के साथ त्सोगो (चंगु) झील के निकट स्थित है। क्योगनोस्ला वन खण्ड के अंतर्गत आने वाला यह क्षेत्र आरक्षित वनों से घिरा हुआ है, जिसमें थोड़ी थोड़ी दूरी पर छोटे-छोटे गांव बसे हुये हैं।

इस क्षेत्र में मुख्य रूप से सामान्य रिजर्व अभियंता बल (जीआरईएफ) में ग्रामीण शामिल हैं। हालांकि अभयारण्य के आसपास के क्षेत्र को जैव विविधता के संरक्षण के उद्देश्य से केंद्र सरकार द्वारा पर्यावरण-संवेदनशील क्षेत्र (इको-सेंसिटिव जोन) के रूप में अधिसूचित किया गया है। इस क्षेत्र की सीमा क्योगनोस्ला अल्पाइन अभयारण्य की सीमा से 25 मीटर से 200 मीटर तक की दूरी पर है। यहां का तापमान सामान्यतः 7

आइरिस क्लार्कई बेकर एक्स हुक.एफ.

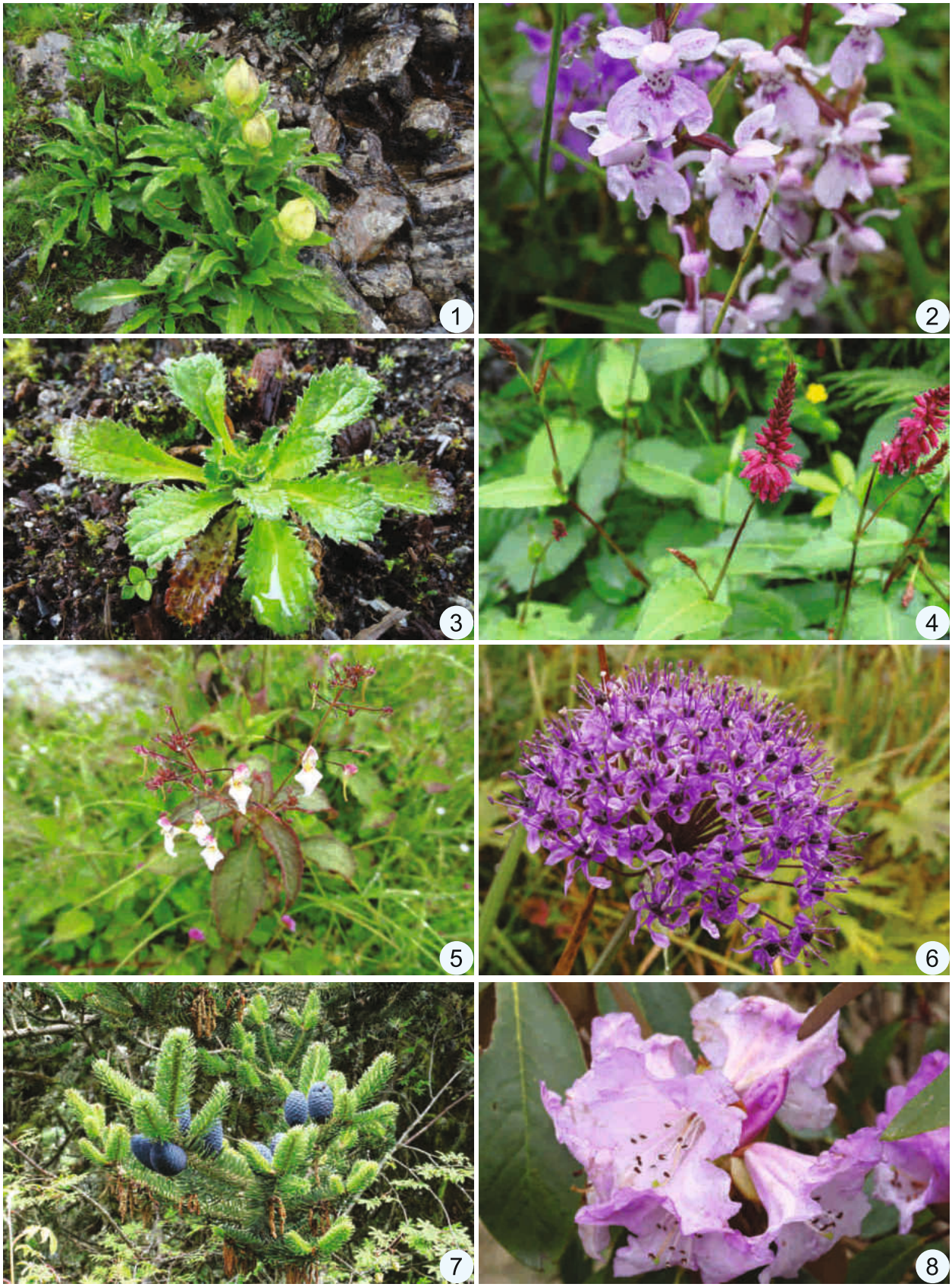

1. *सासुरिया ओवेलाटा* (डीसी.) एडगेव (2); २. *पोनोरचिस चुसुआ* (डी. डॉन) सू; 3.*पिक्रोराइजा कुर्वा* रोले एक्स बन्थ; 4. *पर्सिकैरिया एम्प्लेक्सिकोलिस* (डी. डॉन) रॉन डिक्र.; 5. *इंपेशियंस रेडियाटा*; 6. *एलियम वालिचि* कुंथ; 7. *एबीस डेन्सा* ग्रीफ.; 8. *रोडोडेंड्रोन कैम्पैनुलेटम* डी. डॉन

डिग्री सेल्सियस से 15 डिग्री सेल्सियस तक रहता है। यह क्षेत्र जनवरी से अप्रैल के दौरान हिमाच्छादित रहता है, और जून से सितंबर के बीच यहां अधिकतम वर्षा होती है। क्योगनोस्ला अल्पाइन अभयारण्य के अंदर रात्रि ठहरने के लिए दो कच्ची झोपड़ियां हैं- नामनंग और पंच गोथ। इन झोपड़ियों को एमजी मार्ज, गंगटोक में सिक्किम वन विभाग कार्यालय से बुक करने की आवश्यकता होती है। सिक्किम वन विभाग ने हेड लॉग झोपड़ियों में रहने के लिए प्रति रात केवल रुपए 350 /- प्रति आवास पर आवास शुल्क रखा है। अभयारण्य में प्रवेश शुल्क रुपये 55/- प्रति दिन एवं रुपये 25/-प्रति दिन कैमरे के लिए रखा गया है, इस अभयारण्य का ट्रैकिंग रूट वास्तव में अद्भुद हैं। इस अभयारण्य के आंतरिक हिस्से से मुख्य रूप से 3 ट्रैकिंग रूट गुजर रहे हैं:

1. हेलीपैड-खेडिंग और वापस (लगभग 8 किमी); 2. रोंगचु- नाको और पीठ (लगभग 20 किमी) एवं 3. हेलीपैड-सिमुलाखा-गोरल रॉक-रोंग चू (लगभग 7 किमी)।

यहाँ पर पाये जाने वाली विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों में रोडोडेन्ड्रॉन वन मुख्य रूप हैं, जिनमें *अरुंडिनिया बांस* मिश्रित है (यह 3000 मीटर से-3300 मीटर तक विस्तृत है), *जूनिपर-रोडोडेन्ड्रॉन* क्षुप मिश्रित जंगल के साथ भी बांस जंगल इसी समकक्ष ऊंचाई पर पाये जाते हैं। *रोडोडेन्ड्रॉन-एबीज* (3400-3800 मीटर), एबीज- वर्चस्व वाले शंकुधारी जंगल (3800-4000 मीटर), और अल्पाइन क्षुप जंगल (3900 - 4200 मीटर) तक मिलते हैं। इस क्षेत्र में पाए जाने वाले सबसे कुछ सामान्य वृक्ष प्रजातियों में *रोडोडेन्ड्रॉन होडगोसोनाई*, *रोडोडेन्ड्रॉन थॉमसोनाई*, *रोडोडेन्ड्रॉन कम्पानुलेटम*, *रोडोडेन्ड्रॉन कम्पाइलोकार्पम*, *रोडोडेन्ड्रॉन सिन्नाबारीनम*, *रोडोडेन्ड्रॉन एंथोपोगोन* इत्यादि। उपरोक्त के अलावा इस अभयारण्य में कई स्थलीय ऑर्किड भी पाए जाते हैं जिनमें *भूटेंन्थे एल्बोमार्जिनाटा*, *पोनेऑर्चिस प्यूबेरूला*, *पोनेऑर्चिस चूसुआ*, *सैटेरियम नेपेलेंसे* और *जिम्नाडेनिया ऑर्किडीस* मुख्य हैं।

इस अभयारण्य की विस्तृत जैव विविधता को कई दुर्लभ, संकटग्रस्त पौधों के साथ-साथ उच्च औषधीय महत्व के पौधों जैसे *एकोनिटम वायोलेसियम*, *एकोनिटम नोवोलुरिडियम*, *एकोनिटम डिसेक्टम*, *एकोनिटम पॉल्मेटम*, *नियोपिक्रोराइजा स्क्रोफुलैरीफ्लोरा*, *नार्डोस्टाइचिस जटामांसी*, *वैलेरियाना जटामांसी*, *वैलेरियाना हार्डविकाई*, *पैनेक्स विपिन्नाटीफिडस*, *सॉस्सूरिया गोस्सीपिफोरा*, *सॉस्सूरिया ऑवालाटा*, *रियम एक्यूमिनेटम*, *रियम नोबाइल*, *जेशीयाना एल्वीसाई*, *लिग्यूलारिया एम्प्लैक्सीकॉलिस*, *बर्जिनिया पुरपुरासेन्स*, *महारांगा इमोडी*, *कोडोनोप्सीस फोटेन्स*, *कैसिओपी फास्टिजियाटा*, *स्वर्सिया हुकेरी*, *आयरिस क्लार्की*, *ऑक्सीरिया डिग्ना*, *बिस्टोर्टा इमोडी*, *प्रिमुला सिक्किमेंसिस*, *मेकोनोपसिस सिम्पलिसिफोलिया*, *मेकोनोपसिस पैनिक्यूलाटा*, *गोल्थिरिया सेमि-इन्फटा*, *प्लेंटेन्गो ओवाटा*, *कार्डामाइन मैक्रोफाइला*, *क्रिमेन्थोडियम रेनिफॉर्मी* आदि समृद्ध करते हैं। इस अभयारण्य के कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में बांस के घने वन क्षेत्र और शंकुधारी वन मुख्य रूप से मिलते हैं।

क्योगनोस्ला अल्पाइन अभयारण्य विभिन्न वन्य प्राणियों का प्रकृतिक आवास है, जैसे गोरल, रेड पांडा, हिमालयी ब्लैक बीयर, हिम तेंदुए, तिब्बती लोमड़ी, रक्त फिजेंट, मोनल फिजेंट, गुलाब फिंच, ग्रिफॉन गिद्ध, लाल बिल वाली चफनी, पीले-थ्रोटेड मार्टन इत्यादि।

क्योगनोस्ला अल्पाइन अभयारण्य का एक "पर्यावरणीय संरक्षित क्षेत्र" के रूप में सिक्किम हिमालय की उच्च हिमालयी जैवविविधता और अल्पाइन जीन बैंक के संरक्षण में उत्कृष्ट महत्व है।

भारत में कुकरबिटेसी कुल की विविधता-एक अवलोकन

मयंक द्विवेदी, संदीप चौहान, शिवानी मिश्रा[2] एवं ए ए अंसारी
भारतीय गणतन्त्र वानस्पतिक उद्यान, नोएडा , [2]भारतीय खाद्य निगम, दिल्ली

ऐतिहासिक रूप से पुष्पीय पौधों के आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण कुलों में से एक कद्दू कुल के पौधों की मानव जाति के विकास में मुख्य भूमिका रही है। इस कुल के पौधों की जैव विविधता केंद्र का विवरण संरक्षण और आनुवांशिक सुधार प्रासंगिक है। इस कुल की विश्व में अधिकतम विविधता उष्णकटिबंधीय व उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती है तथा दक्षिण पूर्व एशिया में इसका बहुलता है। पैतृक संकर्ण व दिनांकित उत्थान विधियों से यह अनुमानित हुआ है की इस कुल का उद्भव कृटेशियस (Cretaceous) युग में हुआ है तथा इसका उद्भव केंद्र एशिया महाद्वीप में है। वायु, जल व पक्षियों आदि द्वारा लंबी दूरी तक वितरण विधि में समकालीन वितरण के निर्धारण में एक प्रमुख भूमिका निभाई है। इस अध्ययन के निष्कर्ष से कद्दू कुल का वितरण एशिया और अफ्रीका व मडागास्कर, अफ्रीका व दक्षिण अफ्रीका तथा दक्षिण पूर्व एशिया से ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप में हुआ है।

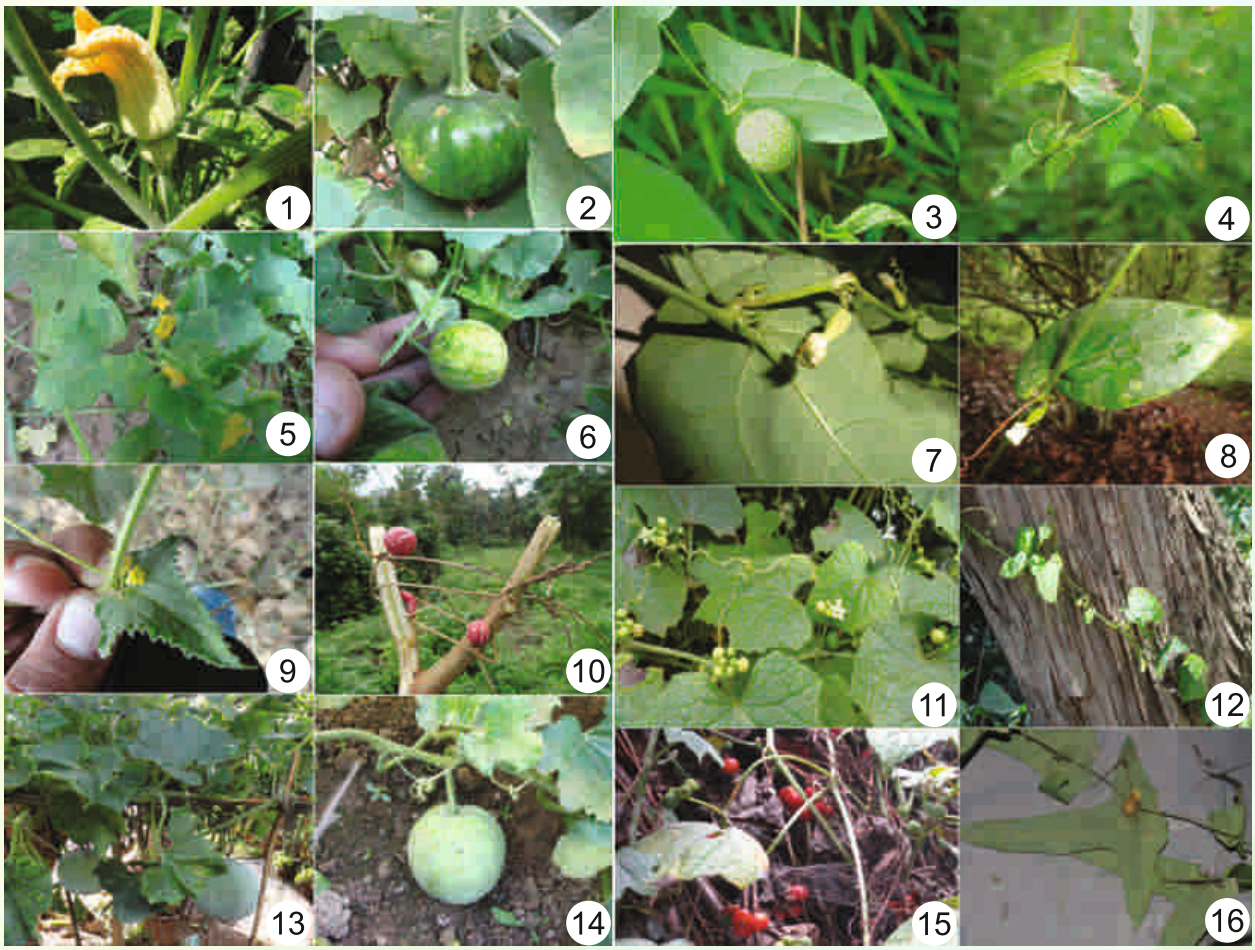

भारत में वन्य और सवंर्धित कुकरबिटेसी की विविधता। 1. *कुकरबिटा मेक्सिमा* (वनस्पति उद्यान, दिल्ली विश्वविद्यालय) का पुष्प; 2. *सी. मेक्सिमा* (वनस्पति उद्यान, दिल्ली विश्वविद्यालय) का फंल; 3. *सोलोना हेटरोफाइला* गोलाकार सरस फल; 4. सोलोना का दीर्घवृत्ताभ सरस फल; 5. *कुकुमिस मेला* का पुष्प; 6. *सी. मेलो* का फल; 7 एवं 8. *एस एमप्लेक्सीकॉलिस* का पुष्प एवं पत्राधार; 9. *सी. मेडर्सपटाना* का पुष्प; 10. *डिप्लोसाइक्लोस पामासन* का गोलाकार सरस फल; 11. गुच्छ पुंकेसर पुष्प व जेड. *बाडीमेरी* का एकल सरस फल;12. जेड. *बाडीमेरी* का आरोहण प्रवृति; 13. *बेनिनकेसा हिसपेडा* का फल; 14. *बी. फिसटुलोसा* का फल; 15. जेड. *हुकेरीआना* का रक्तिम गुच्छ फल; 16. *सोलेना* जाति का फल व पत्ते।

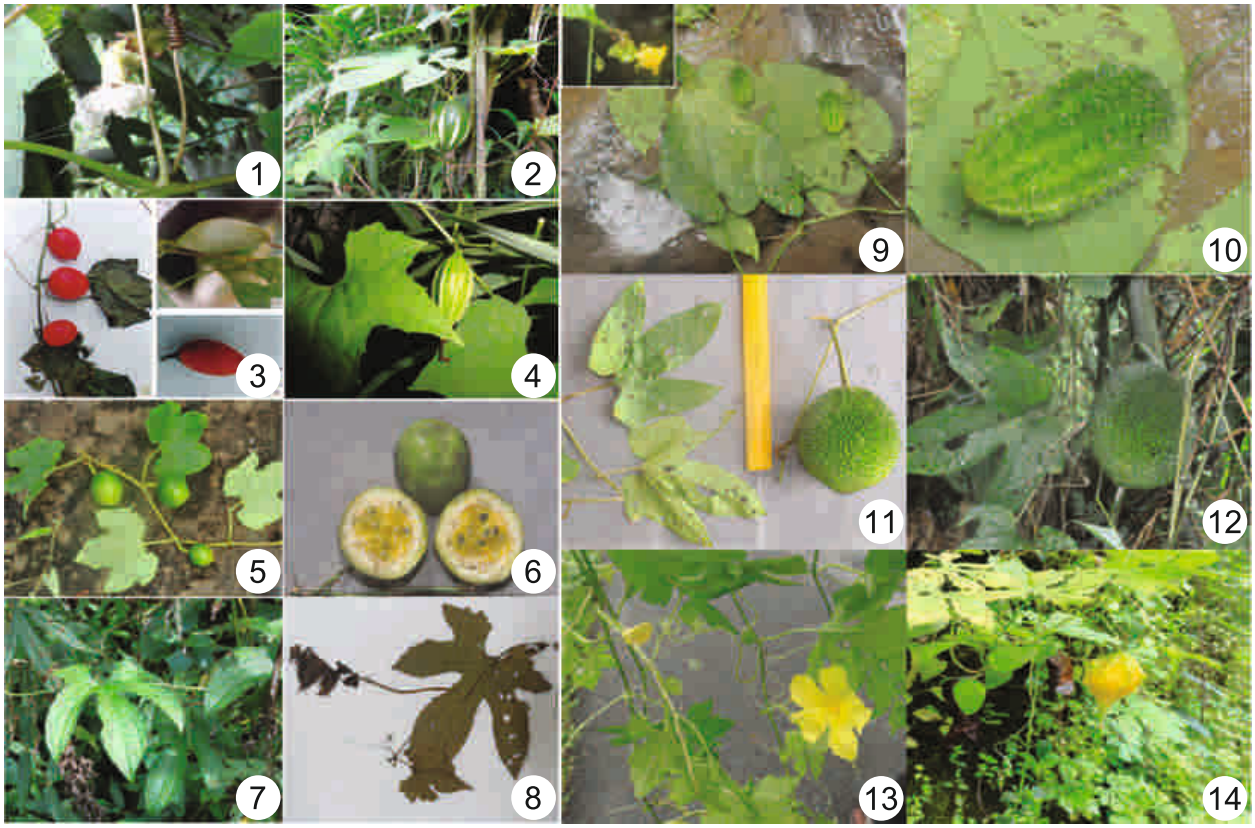

1. *ट्राइकोसेन्थेस ब्रेक्टेटा* का पुष्प; 2. *टी. ब्रेक्टेटा* का फल; 3. *टी. लेपिनियाना* का परिपक्व फल; 4. *टी. लेपिनियाना* का अपरिपक्व फल; 5. *टी ओविगेरा* का पत्र व अपरिपक्व फल; 6. *टी ओविगेरा* का विभाजित फल; 7. *टी. पमाटा* के पंचखंडदार पत्ते; 8. *टी. खासियाना* का असीमाक्षी पुष्पक्रम; 9 एवं 10. *थलडीयांथा कोर्डिफोलिया* में हृदयाकार पत्ते व कांटेदार फल; 11 एवं 12. *मेमोरोडिका कोचिनेसिस* का त्रिखंडदार पत्ते व कांटेदार फल; 13 एवं 14. *एम. कैरेन्सीया* का पुष्प व परिपक्व फल

जैसा की ऊपर वर्णित गया कद्दू कुल सब से अधिक आर्थिक रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कुलों में से एक हैं तथा इनकी खेती व्यापक रूप से सब्जी व फलों की फसलों के रूप में किया जाता है। मुख्य रूप से इस समूह में कद्दू, पेठा, तरबूज, खरबूज, ककड़ी, खीरा, परवर, तरोई, करेला आदि हैं।

विश्व स्तर पर कद्दू कुल में 97 वंश और 1000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनका विस्तार मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय व उपोवंकटिबंधीय क्षेत्रों में है तथा कुछ ही जातियाँ शीत व ठंडी स्थानों पर पाई जाती हैं।

भारत में इस कुल के 31 वंश व 94 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनका विस्तार मुख्य रूप से उत्तर पूर्व व प्रायद्वीप क्षेत्रों में हैं। इनमें से 5 वंशों की 9 प्रजातियाँ केंद्रीय व दक्षिण अमेरीका से लाकर लगाई गई हैं तथा बड़े स्तर पर खेती की जाने वाली प्रजातियाँ निम्नलिखित रूप से है:

1. *सिट्रूलस लेनेटस* (तरबूज), 2. *साइक्लन्थेरा पिडेटा* (तरबूज), 3. *केड्रोस्टिस फोएटिडिसिमा* (तरबूज), 4. *साइकोस ईडुलिस* (स्कवैश), 5. *कुकरबीटा* (कद्दू) की 5 प्रजातियाँ।

भारत में पाई जाने वाली 94 जातियों में से निम्नलिखित 8 प्रजातियाँ स्थानिक हैं:

1. *कुकुमिस इंडिकस*, 2. *कुकुमिस सीटोसस*, 3. *कुकुमिस साइलेस्टवैलैई*, 4. *मोमोर्डिका सहयाद्रिका*, 5. *सोलेना एम्प्लेक्सीकालिस*, 6. *ट्राइकोसैंथिस एनमलेयैन्सिस*, 7. *ट्राइकोसैंथिस खासियाना*, 8. *ज़ेहनेरिया हुकेरियाना*।

भारत में इस कुल के अधिकतम प्रजातियों वाले वंशों का विवरण निम्न प्रकार हैं:

1. *ट्राइकोसैंथिस* (22 प्रजातियाँ), 2. *कुकुमिस* (11 प्रजातियाँ), 3. *मोमोर्डिका* (8 प्रजातियाँ), 4. *ज़ेहनेरिया* (5 प्रजातियाँ)

इस कुल के अधिकांश सदस्य एक लिंगी या द्विलिंगी होते हैं अर्थात केवल नर या केवल मादा पुष्प धारी या नर व मादा पुष्प एक ही पौधे में पाए जाते हैं। ये वार्षिक या बहुवर्षीय शाकीय अथवा काष्ठीय लता होते हैं तथा अक्सर कंदमूल धारी या मूसला जड़ वाले होते हैं। टेंड्रिल की उपस्थिति इस कुल के अधिकांश सदस्यों का मुख्य लक्षण है तथा यह विशेषता एक पैतृक व प्राचीन स्थिति है।

इस कुल के पुष्प आमतौर पर एक लिंगीय होते हैं, केवल दो प्रजातियों में अब तक द्विलिंगीय पुष्प पाए जाते हैं। परागण मुख्य रूप से मधुमक्खियों द्वारा होता है, परागकण इन के लिए मुख्य भोजन होता है। अवर अंडाशय तथा पार्श बिजाण्डान्यास कुल की विशेषता है। भ्रूण विज्ञान की दृष्टि यह कुल एक समान विशेषताओं को दर्शाता है तथा एंडोस्पेर्म हौसटोरियम की उपस्थिति अधिकांश सदस्यों का मुख्य लक्षण है। पाँच पुकेसर आम तौर पर द्वि या टेट्रास्पोरंगिएट होते हैं। अंडाशय में एक से पाँच तक विभाजन होता है जिनमे तीन भागीय अवस्था बहुत सामान्य होती है। पराग कण 2-3 कोशिकीय अवस्था में विष्फ़ोटित होते हैं। लगभग 14% सदस्यों के गुणसूत्रों की अब तक खोज हो पाई है जो कि आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं, अगुणित गुणसूत्र (हप्लोइड क्रोमोसोम) की संख्या 7-24 के बीच पाई गई है।

पर्यावरण को स्वच्छ बनाएं,
आओ पेड़ - पौधे लगाएं

अंडमान निकोबार द्वीपसमूह की पादप विविधता: संक्षिप्त परिदृश्य

प्रकाश होरो एवं लाल जी सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

जैव विविधता से आशय पृथ्वी पर जीवन की विविधता से है जिसके अंतर्गत भौतिक पर्यावरण के सभी तत्व जैसे मिट्टी, पानी, पशु पक्षियाँ और वनस्पतियाँ आदि सभी आते हैं। अंडमान निकोबार द्वीपसमूह बंगाल की खाड़ी के दक्षिणी - पूर्वी क्षेत्र में स्थित है। यह द्वीपसमूह कुल 572 द्वीपों का एक समूह है, जो भारत की मुख्यभूमि से लगभग 1800 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, यह अपनी ऐतिहासिक, सामाजिक विविधता तथा अक्षुण्य पर्यावरण व अदभुत पारितंत्र के लिए भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में प्रसिद्ध है तथा जिसकी अद्वितीय जैव-विविधता प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक अनुपम उपहार के रूप में अपनी अनुपम छटा को बिखेरती हुई प्रकृति प्रेमियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है।

नीले सागर, हरे वन, श्वेत रेतीले तट, दुर्लभ व लुप्तप्रायः पशु-पक्षी तथा वनस्पतियाँ यहाँ की जैव विविधता के प्रमुख घटक हैं। साथ ही भारत का एक मात्र सक्रिय ज्वालामुखी बैरन द्वीप भी इस द्वीपसमूह का एक महत्वपूर्ण प्रकृति प्रदत्त घटक हैं।

वनस्पतियों के विशेष संदर्भ में जैव विविधता

वनस्पतियाँ जैव विविधता के एक प्रमुख घटक हैं, जिनके बिना पृथ्वी पर जीवन असंभव है। यह द्वीप समूह विविध प्रकार के वनों से आच्छादित होकर एक संतुलित पारितंत्र को बनाए हुए हैं।

द्वीपों में वनों के प्रकार - द्वीपसमूह में मुख्यतः चार प्रकार की वनस्पति विविधता पाई जाती है -

1) ऊष्णकटिबंधीय सदाबहार वन -ऊष्णकटिबंधीय सदाबहार वन क्षेत्रों में पूरे वर्ष नम और गर्म जलवायु के कारण वनस्पतियाँ हरी-भरी रहती हैं। ऐसी वनस्पतियाँ पूरे वर्ष भर हरी-भरी दिखती हैं इसीलिए इन्हें सदाबहार कहते हैं। यह मुख्यतः ऐसे क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ 220 से.मी. से अधिक वर्षा होती है। इसकी ऊँचाई 60 मीटर या इससे अधिक होती है और यह पौध, झाडियों, लताएँ, ज़मीन पर फैलने वाले पौधे और फर्न जैसी संरचनाओं में पाई जाती है। सुगंधित लकड़ी, रबर, बाँस, आबनूस आदि महत्वूर्ण पेड़ है जो ज्यादातर ऊष्णकटिबंधीय सदाबहार वनों में पाया जाता है। यह अंडमान निकोबार द्वीपसमूह में बहुतायत में पाई जाती है। इनका प्रयोग मुख्यतः फर्नीचर, हस्तकला आदि में किया जाता है।

2) ऊष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन - इन वनों के पेड़ों में पतझड़ वर्ष में एक बार होता है इसलिए इन्हें ऊष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन कहा जाता है। इसके भी दो प्रकार है पहला आर्द्र पर्णपाती वन जहाँ 100 से 200 से.मी. तक वर्षा होती है। इस प्रकार के वनों में सागौन, बांस, जामुन, समुद्री महुआ जैसे वृक्ष आते हैं और दूसरा शुष्क पर्णपाती वन जहाँ 100 से 150 से.मी. तक वर्षा होती है। इस प्रकार के वनों में पीपल, नीम जैसे किस्म की वनस्पति प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह की एक प्राकृतिक छटा

3) कंटीले वन - द्वीप समूह में इसके अंतर्गत कांटेदार पेड़ और झाड़ियाँ पाई जाती हैं। ऐसे वृक्ष मुख्यतया वहाँ पाये जाते हैं जहाँ वर्षा अपेक्षाकृत 100 से.मी. से कम होती है। इस प्रकार की वनस्पतियाँ जल संरक्षण में सहायक होती है तथा इनकी पत्तियाँ ज्यादातर मोटी और छोटी होती है जैसे खजूर व ताड़।

4) ज्वारीय वन - इस प्रकार की वन वनस्पतियाँ दलदली ज्वार खाड़ियों में पाए जाते हैं। इसमें कुछ की जडे, तने और शाखाएं कुछ समय के लिए जलमग्न भी रहती हैं। इन्हें मैंग्रोव (सुंदरी वन) के नाम से जानते हैं। ऐसे वन क्षेत्र इस द्वीप समूह में बहुतायत में पाई जाती है। इसके अलावा ताड़, नारियल, क्योटा आदि भी ज्वारीय वनों की प्रजातियाँ है। इनकी मुख्य विशेषता है कि ये चक्रवात के दुष्प्रभाव से संरक्षण प्रदान करते हैं।

जैव-विविधता को प्रभावित करने वाले कारक

जैव-विविधता पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व का मूलभूत आधार हैं और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति पर ही आश्रित रहती है तभी तो जैव-विविधता इसी प्रकृति के अभिन्न अंग के रूप में परिलक्षित होती है।

ऐसी दशा में यदि हम इसका संरक्षण न करें तो जीवन के लिए ही खतरा बन जाता है। द्वीपों में जैव विविधता को प्रभावित करने वाले कुछ महत्वपूर्ण कारक इस प्रकार है -

1) जनसंख्या - द्वीप समूह की आबादी आज लगभग चार लाख तक पहुँच गई है चूँकि यहाँ 86 प्रतिशत से अधिक भूमि आरक्षित वन क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं तथा राजस्व भूमि व निवास के लिए भूमि कम है। इस द्वीपसमूह में रोज़गार के लिए भारत के अन्य स्थानों से लोगों का अप्रवासन भी यहाँ की जनसंख्या वृद्धि का कारण है। परिणामतः इसका सीधा प्रभाव यहाँ के पर्यावरण पर पड़ता देखा जा सकता है।

2) नगरीकरण तथा विकास -वर्तमान समय में नगरीकरण तथा विकासीय कार्य तेज़ी से द्वीपों में बढ़ रहा है जिससे द्वीपीय वातावरण में प्रतिकूल प्रभाव का खतरा बढ़ता जा रहा है। किसी भी क्षेत्र के विकास के लिए वहाँ के ढाँचागत स्वरूप को विकसित करना आवश्यक होता है जिसे विकास की दृष्टि से नज़रअंदाज नहीं कर सकते हैं। ऐसी दशा में जरूरत है ऐसे विकासीय परियोजनाओं को हाथ में लेने की जिससे यहाँ के पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

3) पर्यटन -आज अंडमान निकोबार द्वीप समूह एशिया में एक मनोरम पर्यटक स्थल के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए है जो अपनी नैसर्गिक सुंदरता के चलते पूरे विश्व के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। यहाँ का राधानगर समुद्र तट तो पूरे एशिया का सबसे खूबसूरत सागर तट माना गया है। पर्यटन के कारण आर्थिक समृद्धता हासिल की जा रही है, युवाओं को रोज़गार तो मिल रहा है वहीं दूसरी ओर यहाँ की जैव -विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता है। इसके लिए यहाँ पारितंत्र आधारित-पर्यटन को बढ़ावा देना बेहतर होगा।

4) प्राकृतिक कारण - द्वीप समूह की जैव विविधता विगत वर्षों में प्राकृतिक कारकों जैसे सुनामी, चक्रवात से प्रभावित हुई है। 2004 में आई सुनामी के कारण यहाँ चल रहे विकास कार्यो तथा प्राकृतिक संसाधनों को काफी नुकसान पहुँचा। कई हेक्टेयर भूमि खारे पानी में जलमग्न हो गई जिससे भूमि की गुणवत्ता प्रभावित हुई और कृषि भूमि में लवणता की मात्रा बढने से कृषि कार्य पर असर पड़ा हैं। कुछ तटीय क्षेत्रों पर स्थित मैग्रोव के कारण तटीय क्षेत्रों की रक्षा तो हुई वहीं दूसरी ओर कई स्थानों पर मैग्रोव को नुकसान भी पहुँचा। कई स्थानों पर ज्वारभाटा के दौरान जल स्तर में बढोत्तरी देखने को मिली तो कहीं पर कमी, जिसके कारण अपूर्णनीय क्षति हुई हैं। प्राकृतिक कारणों पर तो मनुष्य का कोई वर्ष नहीं रहता फिर भी इसके पीछे जलवायु में हो रहे परिवर्तन को ही प्रमुख कारण माना जाता है।

जैव-विविधता का संरक्षण

वर्तमान परिदृश्य में जैव विविधता संरक्षण एक संवेदनशील विषय है जिसके लिए भारत सरकार ने विविध रूपों में जैव-संरक्षित क्षेत्रों को चिन्हित किया हैं जैसे राष्ट्रीय पार्क, समुद्री राष्ट्रीय पार्क तथा वन्य जीव अभयारण्य स्थापित किए गए हैं, जिनका चयन 15 जैव-भौगोलिक क्षेत्रों में किया गया है जिसमें अंडमान निकोबार द्वीप समूह भी एक है जहाँ उन विशेष पशु-जंतुओं और वनस्पतियों के संरक्षण के लिए विशेष संरक्षित क्षेत्रों को चिन्हित किया गया है। इसके अलावा द्वीप समूह में जैव विविधता के संरक्षण के लिए विविध कार्यक्रमों का संचालन सक्रिय रूप में देखा जा सकता है जैसे -

1) शिक्षा - द्वीपों की जैव विविधता के संरक्षण को शिक्षा के जरिए बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके लिए केन्द्र सरकार द्वारा स्थानीय

प्रशासन की सहायता से विविध कार्यक्रमों का संचालन हो रहा है। अंडमान निकोबार द्वीप समूह में स्नातक स्तर पर पढ़ाए जाने वाले अधिकतर पाठ्यक्रमों में एक विषय के रूप में पर्यावरण विज्ञान पढाया जाता है। समय-समय पर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा पर्यावरण संरक्षण पर जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है जिससे स्थानीय नागरिकों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति रूझान को देखा जा सकता है। इसके अलावा अनौपचारिक रूप से भी विविध कार्यक्रमों, संगोष्ठियों, दूरदर्शन और आकाशवाणी के माध्यम से ज्ञानवर्धक पर्यावरण संबंधी कार्यक्रम प्रसारित कर इस बारे में लोगों को जागरूक किया जा रहा है।

2) अनुसंधान -जैव विविधता संरक्षण में अनुसंधान की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसके जरिए जैव विविधता संरक्षण की दिशा व दशा तय करने में सहायता मिलती है। द्वीप समूह में अनुसंधान की अपार संभावनाएं भी विद्यमान है। अनुसंधान में सहायक कई विभाग, ऐजंसियाँ और संस्थाएं कार्यरत हैं जिसमें भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। इसके अलावा पॉण्डेचेरी विश्वविद्यालय का आपदा प्रबंधन व पर्यावरण विज्ञान तथा समुद्री जीव विज्ञान विभाग, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, राष्ट्रीय समुद्री प्रौद्योगिकी संस्थान, केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा भी अनुसंधान कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जो जैव विविधता के संरक्षण की दिशा में अनुसंधान को बढावा दे रहे हैं।

3) इको-पर्यटन - द्वीप समूह की विशिष्ट जैव विविधता को हानि न पहुँचे इसके लिए इको-पर्यटन अर्थात इको-टूरिज़्म द्वारा बडे पैमाने पर आर्थिक विकास के लिए राजस्व सृजन एवं पर्यावरण संरक्षण के बीच समन्वय स्थापित किया जा सकता है। इस दिशा में कई प्रयास किए गए हैं जैसे यहाँ के प्रमुख पर्यटन स्थल 'नील द्वीप' को जैविक द्वीप घोषित किया जा चुका है। प्राकृतिक रूप से निर्मित एवं उत्पादित वस्तुओं को उनका मूल्यवर्धन कर पर्यटकों को उपलब्ध कराया जा रहा है जिससे स्थानीय स्वयं सहायता समूह और अन्य लोगों की आय में वृद्धि भी हो रही है।

4) पर्यावरण हितैषी विकास - अंडमान निकोबार द्वीप समूह भूकम्पीय क्षेत्र की दृष्टि से जोन-पांच में आता है जहाँ बड़े भूकम्प आने पर बड़ी तबाही हो सकती है। जैसे 2004 में आए भूकम्प और उसके बाद आई सुनामी में हुआ। इसके लिए समय समय पर जागरूकता कार्यक्रम, आपदा प्रबंधन संबंधी कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इस दिशा में भारतीय तट रक्षक बल की ओर से यहाँ नियमित अंतराल में स्वच्छ सागर अभियान, स्थानीय प्रशासन द्वारा सभी विभागों और संबंद्ध ऐजंसियों की सहायता से वर्ष में दो बार तट सुरक्षा अभ्यास आयोजित किया जाता है। आपदा प्रबंधन तैयारियों के मद्देनज़र पूर्वाभ्यास के रूप में प्रत्येक महीने की 3 और 18 तारीख को ऊँची आवाज़ में चिन्हित स्थानों में सायरन बजाए जाते हैं, इसे किसी भी तरह की वास्तविक आपदा की स्थिति में बजाकर लोगों को सर्तक किया जा सके।

जैव-विविधता के संरक्षण में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के स्थानीय केन्द्र की भूमिका

द्वीप समूह की विशिष्ट जैव विविधता की मूलभूत कड़ी के रूप में प्रकृति प्रदत्त पादप विविधता के सर्वेक्षण, संवर्धन एवं संरक्षण हेतु भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के अंडमान निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र की स्थापना 30 फरवरी 1972 को हुई और तभी से यह केन्द्र पादप सम्पदा के सर्वेक्षण, संवर्धन एवं संरक्षण में अपने उद्देश्यों की प्रति निष्ठा पूर्वक कार्य कर रहा है। इस केन्द्र के वैज्ञानिकों और तकनीकी कर्मचारियों द्वारा समय समय पर कई अनुसंधान व शोध यात्राएं की जाती हैं। केन्द्र के वैज्ञानिक दुर्गम, दूरस्थ, आरक्षित क्षेत्रों तथा आदिम जनजातियों के आरक्षित वन क्षेत्रों के सर्वेक्षण के आँकड़े स्थानीय प्रशासन को उपलब्ध कराके जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहें हैं।

यह केन्द्र, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के सहयोग से हरित कौशल विकास कार्यक्रम के अंतर्गत आधारभूत और एडवांस पाठ्यक्रमों का संचालन कुशलता पूर्वक करता आ रहा है, जहाँ विद्यार्थियों और युवाओं को पैरा टैक्सोनॉमिस्ट और संबद्ध विषयों में विस्तार से सैद्धांतिक और व्यवहारिक प्रशिक्षण देकर इको-टूरिज़्म जैसे क्षेत्रों में रोज़गार के सुनहरे अवसर प्रदान कर रहा है। जिससे एक प्रशिक्षित युवा पर्यटक गाइड के रूप में अपने कैरियर को स्थापित कर सकता है।

निष्कर्ष- अन्य जैव-भूभागों की भाँति इन द्वीपों में वास करने वाली आदिम जनजातियाँ जारवा, ओंगी, सेंटनलीज़, सम्पेन और ग्रेट अंडमानी तथा अन्य स्थानीय निवासियों का जीवन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से यहाँ की प्रकृति प्रदत्त संसाधनों पर आधारित है। वर्तमान परिदृश्य में द्वीपों की जैव विविधता के ऊपर मानवीय क्रियाकलापों का गहरा व प्रतिकूल प्रभाव न पड़े इसके लिए अद्वितीय एवं नाजुक जैव विविधता के संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता नितान्त आवश्यक है।

नागफनी (कैक्ट्स) में अति सूक्ष्मजीवियों जनित रोग एवं उपचार

शिव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

कैक्ट्स मुख्य रुप से रख-रखाव-उनमुक्त पौधा इसलिए है क्योंकि इन्हें उगाने में कोई परेशानी नहीं होती बशर्ते आवश्यकतानुसार पर्याप्त रोशनी, मिट्टी का सही मिश्रण तथा पानी उचित मात्रा में हमेशा मिलती रहे। उपयुक्त वातावरण में सही तरीके से इन्हें उगाने पर इनमें किसी प्रकार के कीट तथा रोग के होने का कोई खतरा नहीं होता। परन्तु अन्य पौधों की तरह ऐसा होना अपवाद स्वरुप है। किसी प्रकार के रोग से बचाव के लिए सामान्य नियम यह है कि यदि पौधों को हवादार जगह एवं तेज धूप में रखा जाय तो इनका प्रभाव काफी हद तक कम हो जाता है। इसके ठीक विपरीत उच्च आर्द्रता तथा कम तापमान हो तो रोग के बढ़ने की क्रिया काफी अधिक हो जाती है। इसके साथ कैक्ट्स को उगाने के लिए व्यवहार किए गए संक्रमित पौध या उगे हुए पौधों में अतिशीघ्र या कुछ समय के अन्तराल पर विभिन्न जीवी (बायोटिक) रोग-कारकों या रोगाणुओं जैसे सूक्ष्म विषाणु, जीवाणु तथा कवक (फफूँद) या अन्य कारक या उसके प्रभाव जैसे सूक्ष्मकीट, जमीन के अन्दर या बाह्य वातावरण में पाए जाने वाले कीट-पतंगें, गोलकृमि (निमेटोड), चीटियाँ, घोंघे तथा सल्गस, पक्षी, स्तनधारी जन्तुओं जैसे चूहे, शशक (खरगोश), इत्यादि के कारण इनका बढ़ना आसान नहीं होता। वातावरण में कवक के बीजाणु हमेशा पाए जाते हैं जो सही मौका (जैसे अत्यधिक पानी देने से, मिट्टी गीली होने तथा थोड़ा सर्द या कम तापमान) पाते ही अंकुरित होकर रोग उत्पन्न करने के लिए सक्षम हो जाते हैं। कीटों द्वारा कैक्ट्स के रस को पीने के क्रम में ऊतकों में जो घाव बन जाता है ऐसे घाव ही रोगाणुओं का मुख्य प्रवेश द्वार का काम करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कवक द्वारा रोग पैदा करने की क्रिया उनमें खुद निहित होती है। इस प्रकार जीवाणु तथा कवक के विभिन्न रोगाणु से उत्पन्न रोग के कारण मांसलोदभिद् (गूदेदार या रसदार) पादप (पौधा) अतिशीघ्र मर जाते हैं। अजीवी (एबायोटिक) कारक जैसे इनके उगाने के तरीके में गलतियों के कारण या फिर पारिस्थितिकी या उसमें बदलाव के कारण जैसे अत्यधिक पानी देने से, तीक्ष्ण धूप के कारण सूखने तथा झुलसने से, कम रोशनी के कारण अप्राकृतिक रुप से बढ़ने, अत्यधिक ठंडे ऋतु में पाला पड़ने से या फिर गमले के अन्दर पौधे के जड़ का अत्यधिक बढ़ने के कारण, कैक्ट्स के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी, बाह्य ऊतक के काष्ट में परिवर्तन होना, शारीरिक हानि, प्रकाश-विषालुता (फोटोटॉक्सिसिटी), इत्यादि, कैक्ट्स के प्राकृतिक वृद्धि में मुख्य अवरोध के कारक हैं।

जड़ से लेकर फूल-फल तक इन रोग-कारकों या कारणों के लक्षण को एक प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा ही आसानी से पहचाना जा सकता है। रोग के लक्षण की पहचान, इनके रख-रखाव या उपचार करने में काफी मदद करती है। परन्तु, उपयुक्त समय पर लक्षण पहचान लिए जाने के बाद अगर समुचित उपचार न मिले तो पौधा सिर्फ मर ही नहीं जाता अपितु, वातावरण में रोग के कारकों या रोगाणुओं की संख्या को भी बढ़ाता है। परन्तु, ऊपर उल्लेखित कारकों में से यहाँ मुख्यत: तीन प्रकार के जीवी रोग-कारक जैसे विषाणु, जीवाणु तथा अन्य सूक्ष्मजीव कवक से कैक्ट्स में होने वाले विभिन्न रोग तथा उनके उपचार की विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है।

1. अनियंत्रित अधिक वृद्धि तथा पत्ति कर्ल, 2. सामान्य रंग का बदलना

विषाणु रोग

इस प्रकार के रोग-कारक का विस्तार रोग-ग्रसित पौधों के रस, कीट या फिर इनके उगाने के क्रम में व्यवहार किए गए संक्रमित सयंत्र के पुन: व्यवहार करने पर होता है। अब तक यूरोप तथा ऊत्तरी अमरीका में 5 तरह के विषाणुओं जैसे सुमोंस ऑफ ऑपन्सिया (SOV),

वाइरस X कैक्ट्स (CLC), वाइरस कैक्ट्स 2 (CV2), वाइरस जाय्गोकैक्ट्स (ZV) तथा वाइरस सगुआरो (SV) को खोजा जा चुका है। इनमें से कुछ वाइरस को संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीय इलाके में उगने वाले जंगली पौधों से भी ग्रसित होने के कारक के रुप में उल्लेखित किया गया है। बौनापन, अनियंत्रित अधिक वृद्धि, सामान्य रंग का बदलना, आकार-प्रकार में परिवर्तन विषाणु द्वारा पौधे में रोग-ग्रसित होने का लक्षण है। इनका दुष्प्रभाव साधारणत: मनुष्यों में नहीं होता। विषाणु-सम (वायरॉयड) द्वारा ईम्पेसिएंस नेक्रोटिक स्पॉट वाइरस (आई.एन.एस.वी.) नामक रोग भी कैक्ट्स में होता है।

इपिफाईल्म मोजेक (खजित) रोग का कैक्टेई में होना सामान्य बात है। इसका लक्षण गंदला-पीला, थोड़ा अन्दर की तरफ पिचका हुआ धब्बा जिसे सही तरीके से परिभाषित नहीं किया जा सकता है बहुतायत पौधे के किनारे से अन्दर केन्द्र की तरफ दिखता है। रोग-ग्रसित पौधा फूल धारण नहीं कर पाते। स्क्लुम्बेर्गेरा, जाईगोकैक्ट्स तथा रीप्सालिडोप्सिस अतिशीघ्र रोग-ग्रसित हो जाते हैं। ऐसे रोग-ग्रसित पौधों को अतिशीध्र नष्ट कर देना चाहिए क्योंकि इनका कोई पूर्ण उपचार सम्भव नहीं है।

मोजेक (खजित) रोग व अन्य कारक का प्रभाव

जीवाणु रोग

ऑर्विनिया नरम/तरल सड़न (साफ्ट राट) का मुख्य कारक जीवाणु *ऑर्विनिया कैरोटोभोरा* तथा *ऑर्विनिया कैक्टिसाइडा* है जो पौधों में किसी कारण से उत्पन्न चोट या घाव के द्वारा प्रवेश करता है। उच्च आर्द्रता पर जीवाणु जल्दी-जल्दी मिट्टी में बढ़ना शुरु करता है तथा अत्यधिक वृद्धि कर पौधे के स्वस्थ अंगों पर नीचे से ऊपर की तरफ रोगग्रस्त करता है। रोग-संक्रमित ऊतक जलमय, मुलायम और काला होता है तथा जिस जगह यह रोग लगता है उसे जल्दी सड़ा-गला देता है। इस रोग का कोई संतोषजनक उपचार नहीं है। यह रोग न हो इसके लिए सूखा या शुष्क पारिस्थितिकी वातावरण, पौधों में धाव ना होने देना या फिर उच्च आर्द्रता के समय काँट-झाट वाले जगह पर अतिशीध्र ताम्र कवक-नाशी का लेप लगा देना या उपयोग, साथ ही स्वस्थ भाग को काटकर पुन: रोपण करना लाभकारी होता है।

कवक रोग

कैक्ट्स के तने पर कवक रोग के होने का लक्षण लाल या जंग जैसा उनके बीजाणु के रंग का या काले धब्बे के चारों तरफ भूरा घेरा उत्पन्न होने से पता चलता है। अधिपादपीय (एपिफाइट) कैक्ट्स में अन्य कैक्ट्स की तुलना में कवक से उत्पन्न होने वाला रोग आम बात है। कैक्ट्स जिसे धूप अत्यधिक पसन्द है विभिन्न प्रकार के सड़न (राट) से ग्रसित होता है। सड़न होने का तात्पर्य कवक के द्वारा मरणासन्न पौधों के ऊतक को खा लेना होता है। परन्तु साथ ही पौधों के अन्य भाग में यह ऊतक को मारने की शुरुआत भी करता है। सही मायने में पौधों में कवक के संक्रमण के उपरान्त उनमें रोग होना कवक के तंतु या कवकजाल के ऊतकों के अन्दर बढ़ने के साथ ही उन्हें मारना भी होता है। जिसके कारण यह पौधे को प्राय: हरे से भूरे रंग में बदल या उन्हें सूखा देता है।

कवक रोग का सामान्य लक्षण

सामान्यत: कवक के संक्रमण को रोक पाना काफी मुश्किल होता है। सबसे अच्छा यह होता है कि संक्रमित पौधे से असंक्रमित तने को लेकर नया पौधा प्राप्त करने के लिए उसको रोपना चाहिए तथा बाकी बचे संक्रमित भाग को पूर्णत: नष्ट कर देना चाहिए। कवकनाशियों का छिड़काव करने पर कवक के संक्रमण को कम किया जा सकता है परन्तु, इस तरह इन्हें पूरी तरह खत्म करना असम्भव होता है।

प्रत्येक रोग-कारक कवक जाति से पौधों में उत्पन्न होने वाले रोग का लक्षण भिन्न होता है जिन्हें पहचानने के बाद ही उपयुक्त उपचार दिया जाता है। संक्षिप्त में ये रोग इस प्रकार के होते हैं:

1. राट (सड़न) रोग [जैसे ब्लैक राट, शुष्क राट (सूखा सड़न) या फ्युजेरियम राट, तरल राट (गीला सड़न), पायथियम तथा फायटोफ्थोरा सड़न, स्टेम राट (तना सड़न), रूट-नेक राट (गर्द्न-जड़ सड़न) तथा कॉटन रुट राट],

2. धब्बा रोग [जैसे लिफ स्पॉट (चित्ती पत्ति) तथा चारकोल धब्बा],

3. भूरा फफूँद या बोट्रिटिस रोग,
4. पाउडरी मिलडीयू रोग,
5. डैम्पिंग ऑफ रोग,
6. एन्थ्रेकनोज रोग,
7. छर्रा-छिद्र (शॉट-होल) रोग,
8. स्कोर्च या सनस्केल्ड रोग तथा
9. कवक के अन्य रोग।
10. सड़न (राट) रोग

कैक्ट्स के गुदेदार ऊतकों के अन्दर पानी जमा होने के कारण ये सड़न के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं क्योंकि इस तरह के वातावरण में जीवाणु एवं कवक वास करते हैं। प्राकृतिक वासस्थान में कैक्टेई पत्थरीले, अतिशीघ्र सूखने वाले मिट्टी तथा उच्च तापमान में अच्छी तरह बढ़ता है क्योंकि नमी की कमी के कारण ऐसे वातावरण में सड़न का होना असम्भव होता है। उच्च कार्बनिक मात्रा के कारण उपजाऊ जमीन, गीलापन, कम तापमान व उच्च आर्द्रता के कारण कैक्ट्स के विभिन्न जाति में सहनशीलता भिन्न होती है। ऐसे में सड़न प्राय: नीचे से ऊपर की तरफ बढ़ता है। इस तरह पौधे के जड़ में सड़न सबसे पहले होता है। परन्तु, तने में इसका कोई असर इसलिए नहीं होता, क्योंकि आर्द्रता अधिक नहीं होती। पौधे के तने की सड़न ऊपर से नीचे तब होती है जब सिंचाई के लिए पानी ऊपर से दिया जाता है। ऐसा करने पर पौधे की कोशिकाएँ पानी से भर जाने के बाद गुब्बारे की तरह फट जाती हैं तथा बिना उपचार ऐसा लगातार होने पर प्रभावित कोशिकाएँ सड़न के शुरुआत के लिए सही जगह का निर्माण करती हैं। सड़न वाला भाग मुलायम, चिकना तथा दूर्गंधीत होता है। शुरुआत में ये सड़न काँटेदार पौधे में नहीं दिखता है। नीचे से ऊपर की तरफ बढ़ने वाला सड़न का पता जब चलता है तब तक पौधे को काफी हद तक रोग हो चुका होता है।

साधारणत: सड़न जीवाणु के कारण होती है परन्तु, यह कवक के द्वारा भी होता है। शुष्क वातावरण में सड़न तब प्रारम्भ होती है जब उसमें किसी प्रकार से क्षति पहुँचती है।

कैक्ट्स को सड़न से बचाने के लिए लक्षण पता चलने के बाद यह अच्छा होता है कि इससे प्रभावित भाग को अतिशीघ्र काँटकर निकाल दिया जाय। स्वस्थ पौधे का मतलब वह हल्का हरा, सेव की तरह चिकना व कड़ा तथा बिना किसी दाग या धब्बे जैसा हो। सड़न से बचाव के लिए यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि मिट्टी सामान्यत: अच्छा होने के साथ ही वह लम्बे समय तक नमी-रहित हो। कैक्ट्स के बढ़ने के समय पानी नहीं देना चाहिए। यदि तापमान कम हो तब पौधे का बढ़ना भी कम हो जाता है। ऐसे में आर्द्रता के कारण सड़न की शुरुआत अतिशीघ्र शुरु हो जाती है। सड़न से कैक्ट्स को बचाने के लिए ठंडे वातावरण या प्रदेशों में तापमान के गिरने के अनुसार २ से ३ या ४ सप्ताह के अन्तराल पर पानी देना चाहिए। सुशुप्त अवस्था में भी पानी नहीं देना चाहिए।

साधारणत: स्वस्थ और बढ़ने वाले पौधे सड़न रोग के होने से इन्हें बचाता है। परन्तु मुश्किल तब बढ़ जाती है जब इनके ऊपर कीड़ों का आक्रमण होता है। ये पौधे के शरीर को क्षति पहुँचाते हैं जिसके कारण रोग-कारक जीव इनके अन्दर प्रवेश कर इन्हें रोग-ग्रसित कर देते हैं। कवक एक ऐसा रोग-कारक है जो पौधे के मरे हुए जड़ के द्वारा असामान्य मृदा (मिट्टी) तथा वातावरण के कारण होता है। स्वस्थ तने को काटने के लिए व्यवहार किए गए चाकू को प्रत्येक बार अल्कोहल से साफ करना चाहिए ताकि कवक के बीजाणु या अन्य रोगाणु से वह मुक्त हो जाए। कटे हुए भाग पर गंधक के पाउडर का छिड़काव करना लाभदायक होता है। सड़न कई प्रकार के होते हैं।

इपिफाइल्म में ब्लैक राट का लक्षण

ब्लैक राट

ब्लैक राट (काला सड़न) ठीक उस तरह का होता है जिस प्रकार इसका नाम है। रोग-कारक कवक से प्रभावित पौधे के ऊपर से कवक के बीजाणु नीचे गिरकर मिट्टी के ऊपरी सतह को काला कर देता है। काला सड़न एक भयंकर कवक रोग है जो वर्ष के ठंडे ऋतु में उच्च

आर्द्रता के समय बहुतायत अधिक तेजी से बढ़ता है।

सभी प्रभावित पौधे जो संक्रमित हो चूके हो या उनके होने का आभास होता हो का समुचित उपचार करने के साथ उनके समस्त गमलों के मिट्टी को भी नष्ट कर देना चाहिए। पूरा संक्रमित पौधा जो स्वस्थ दिखता है उसे तथा उसके जड़ को अच्छी तरह धोकर पूरी तरह निरीक्षण करना चाहिए। इसके बाद कवकनाशी जैसे प्रेभिक्योर (0.15%) के दो भाग का बेनोमाऐल (0.05%) के साथ घोल बनाकर पूरे पौधे को उसमें आधे घंटे तक डुबाकर रखना चाहिए। फिर पौधों को बाहर निकालकर 5 से 10 दिनों तक हवा में सुखाने के बाद हवादार मिट्टी [जिसमें झांवा (पमिस) या लाव-रॉक ग्रेवल (बजरी), परलाइट तथा सदृश्य समान मिश्रित हो में रोप देना चाहिए। यदि, उपचार किए गए पौधे में संक्रमण पुन: होता है तो उस पौधे को फिर से ऊपर उल्लेखित घोल में कई बार 14 दिन के अन्तराल पर डुबाकर उपचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, कम तापमान के समय गरमाहट बढ़ाने के साथ आर्द्रता को कम करना चाहिए। रासायनिक उपचार के लिए बेंलेट तथा ऑर्थोसिड 50 या कैप्टान का संयुक्त छिड़काव काफी लाभदायक होता है। सख्त पौधे में कवक के रोग-कारक के संक्रमण के विरुद्ध अधिक शक्तिशाली होता है।

कैक्टेई में तरल राट का लक्षण

सड़न (रॉट) के प्रकार के अनुरुप इनसे प्रभावित जगह तरल या शुष्क होता है। तरल (वेट) रॉट, शुष्क राट से काफी अधिक परेशानियाँ पैदा करता है। तरल राट का कारक जीव एक कवक 'फाइटोफ्थोरा' है। इसके लक्षण के दिखने पर संक्रमित पौधे को पूरी तरह नष्ट कर देना चाहिए नहीं तो यह अन्य स्वस्थ पौधों को भी अतिशीघ्र प्रभावित कर देता है।

तरल राट (गीला सड़न)

पायथियम तथा फाइटोफ्थोरा कैक्टोरम एवं फाइटोफ्थोरा ओम्निवोरा गीला सड़न के रोग कारक हैं। जो संक्रमित मिट्टी से आते हैं। जड़ तथा तने के ऊपर ये आक्रमण शीघ्रता से करते हैं। रोग-ग्रसित पौधा गुदेदार या मुलायम हो जाता है एवं उसका ऊतक सड़ जाता है। इसका पहचान अतिशीघ्र कर लिए जाने पर रोग-ग्रसित पौधे के स्वस्थ भाग को बचा लेने में मदद मिलती है। प्रभावित भाग को रोगाणुरहित एवं साफ चाकू से काट कर अलग कर लेना चाहिए।

फिर पौधे को शुष्क जगह पर रखने के उपरान्त सही समय पर जब रोग का लक्षण खत्म हो जाय फिर इनका पुन:रोपण करना चाहिए।

मिट्टी के संक्रमण दोष को दूर कर, प्रभावित पौधा के साथ उसके गमले को भी नष्ट करना चाहिए। परन्तु जिन पौधों में उपचार किया जा सकता है उनके ऊपर पानी में घुलित प्रोथियोकार्ब-प्रेविकोर (0.15%) या फेनामिसुल-बेयर (0.03%) के घोल तथा मिट्टी के ऊपर डेक्सन का क्रमबद्ध छिड़काव करने पर सफलता प्राप्त होती है। आर्द्रता, जमीन पर पड़े तने के सड़न को बढ़ाता है इसलिए ठंडे ऋतु में पौधों को कम पानी देने चाहिए।

शुष्क राट (सूखा सड़न) या फ्यूजेरियम राट

शुष्क राट (सूखा सड़न) के साथ मुरझाना (म्लानता या विल्ट) प्राय: फ्यूजेरियम ऑक्सिऑक्सपोरम एवं फ्यूजेरियम मोनिलिफोर्मि से विशेष कर वृक्ष कैक्टेई में सामान्य है किन्तु इसका प्रभाव स्तम्भाकार या गोल कैक्टेई में भी होता है। इस कवक का संक्रमण जड़ के ऊपर होता है। पौधे के प्रभावित ऊतक भूरा तथा अन्दर की तरफ पिचका हुआ, असामान्य रंग के धब्बे, सामान्यत: लाल से बैंगनी जैसा होता है। कवक, जड़ से ऊपर की तरफ वाहिकामय प्रणाली (वैस्कुलर सिस्ट्म) की सहायता से तने के शीर्ष पर पहुँच कर म्लानता पैदा करता है। ऐसा होने पर पौधे के शीर्ष को काँटकर निकाल देना चाहिए। परन्तु, अगर यह रोग पौधे के निचले हिस्से में हो तो पौधे को बचाना मुश्किल होता है। ऐसे में अगर तने को काँटा जाय तो उसके खुले भाग से रोग-ग्रसित लाल-भूरा रंग वाहिकामय प्रणाली में स्पष्ट दिखता है। प्रभावित जड़ें बिल्कुल नष्ट हो जाती हैं तथा सिर्फ वाहिकामय के रेशेदार कोशिकाएँ ही लगी होती हैं। पौधे का प्रभावित भाग जमीन से थोड़ा ऊपर लाल या बैंगनी रंग के बीजाणु से अच्छादित होता है। इसका संक्रमण बहुतायत क्षतिग्रस्त भाग जो प्राय: कीटों के काटने या पौधे के किसी भाग को खाने के कारण होता है।

फ्यूजेरियम के अतिरिक्त यह रोग फाइलोस्टिक्टा कोकावा तथा माईकोस्फेरेला से भी होता है। लक्षण के अनुसार पहले यह छोटा काला गोल धब्बा बनाता है। कालांतर में आकार बढ़ने पर (1 या 2 इंच के बराबर होने के बाद) ऊतक के ऊपर 'कैल्स' जो दिखने में कवक के अत्यधिक संख्या में एक होने के कारण छोटे-छोटे कुशन जैसी लघु संरचना संक्रमित ऊतक से बनाता है। यह रोग प्राय: मिट्टी के नमी के कारण होता है।

वाष्प से उपचारित मिट्टी का प्रयोग अतिसंवेदनशील पौधे को संक्रमित होने से बचाने में अहम भूमिका निभाता है। किसी प्रकार के क्षति से बचाव, तापमान तथा आर्द्रता को कम तथा नेत्रजन उर्वरक का व्यवहार न कर इस रोग को और कम किया जा सकता है एवं ऐसा करना बचाव के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। दो भाग बेनोमाऐल (0.05%) का पानी के साथ छिड़काव करना रासायनिक बचाव का प्रमुख साधन है। बिना खर्च पौधों को आघात या चोट से होने वाले रोग से बचाने के लिए पूर्व रोकथाम (प्रीभेंसन) का तरीका आसान होता है। यदि उपचार के बाद कोई लाभ न हो तो पूरे प्रभावित पौधे को नष्ट करना ही रोग से मुक्ति पाने का एकमात्र सरल उपाय है।

क्लैडोफिल सड़न

ईस्टर कैक्टेई के क्लैडोफिल का सड़न चार प्रकार के कवकों द्वारा होता है जो इस प्रकार हैं :

ड्रेकश्लेरा क्लैडोफिल सड़न

ईस्टर कैक्टेई ड्रेकश्लेरा क्लैडोफिल सड़न के लिए अतिसंवेदनशील होता है जिसका लक्षण क्लैडोफिल के ऊपर गोल तथा काला अन्दर घुसा हुआ धब्बा होता है। इस धब्बे का शुरुआत कवक के बीजाणु के बढ़ने के साथ होता है। इस रोग का कोई रासायनिक उपचार नहीं है।

फ्यूजेरियम क्लैडोफिल सड़न

ड्रेकश्लेरा क्लैडोफिल सड़न का ईस्टर कैक्टेई के क्लैडोफिल के ऊपर रोग करने के अतिरिक्त फ्यूजेरियम भी इस पौधे में रोग पैदा करता है। क्लैडोफिल के ऊपर सूखा, घुसा हुआ टैन धब्बा इस फफूँद के नारंगी बीजाणु के बनने से रोग का लक्षण प्रकट होता है। इस रोग का कोई रासायनिक उपचार नहीं है तथा जिस पौधे के क्लैडोफिल तथा जड़ में इसका एक बार संक्रमण हो जाता है वह बच नहीं पाता।

पायथियम तथा फायटोफ्थोरा क्लैडोफिल सड़न

ईस्टर कैक्टेई के क्लैडोफिल के ऊपर पायथियम एफेनिडर्मेट्म तथा पायथियम इरेगुलेरे तथा फायटोफ्थोरा का भी संक्रमण होता है। रोग-ग्रस्त होने पर यह धूमिल से स्लेटी-हरा रंग के साथ फीका होकर रोग के लक्षण को दर्शाता है। जब इस रोग से संक्रमित तना जमीन के ऊपर आता है तब वह मर जाता है। ऐसे पौधे के बचे हुए के कुछ जड़ों का रंग गहरा तथा लुगदी के समान होता है। इस रोग का कोई रासायनिक उपचार नहीं है सिवाय संक्रमित पौधे को नष्ट करने के। सही देख-भाल के द्वारा इस रोग के बढ़ने की क्रिया को कम किया जा सकता है। ईस्टर कैक्टेई 50 से 70 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा मध्यम आर्द्रता पसंद करता है। ऐसे में सुबह में पानी देना लाभदायक होता है तथा पानी देने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि पौधे की मिट्टी सूखी हो। किसी भी हाल में पौधों में कभी आवश्यकता से अधिक पानी नहीं देना चाहिए।

राज़ोक्टोनिया से सड़न

राज़ोक्टोनिया सोलेनी से सड़न

पौध तथा कटिंग में राज़ोक्टोनिया सोलेनी से सड़न होने पर वह पारदर्शी दिखता है। तरल सड़न का शुरुआत तना के निचले हिस्से से होता है। इसकी पहचान पौधे से लगे जमीन या मिट्टी पर बने महीन सफेद या धूसर (स्लेटी) धागे जैसे जाल को देखकर किया जा सकता है। कैप्टन 50, ऑर्थोसिड 50 (0.1 या 0.2%), चिनोसॉल (0.05%), बिनोमाईल (0.05%) का संवेदनशील पौध से इनका कोई तालमेल नहीं है। इनका प्रभाव अंकुरण को बढ़ा या कम करने के साथ-साथ पौधे के बढ़ने की क्रिया को भी रोकता है। इस कवक से प्रभावित पौधे को सावधानी पूर्वक हटाना तथा कम प्रभावित पौधे को गर्म वाष्प से उपचार करना चाहिए।

स्टेम एंड ब्रांच राट (तना तथा शाखा सड़न)

सेप्टोरिया, हेलमिन्थोस्पोर्टियम कैक्टिभोरा तथा स्पॅजिलस एलिएसियस तना तथा शाखा सड़न रोग होने पर पौधे को ममी (पुराना परिरक्षित शव) के सदृश्य बदल देता है। यह रोग कैक्टेई के वासस्थान वाले देश से इनके बीज के साथ आया। यह रोग काफी तेजी से फैलता है तथा कुछ ही दिनों में रोपे या बोए गए सारे पौधों को खत्म कर देता है। यह रोग कम तापमान पर वातावरण में उपस्थित उच्च आर्द्रता के एक साथ होने से होता है। इस कवक की पहचान इसके द्वारा पैदा किए गए मखमली-हरे बीजाणु के परत से होती है। फायटोफ्थोरा पारासीटिका (फायटोफ्थोरा निकोटिआने) तथा फायटोफ्थोरा, ऑल्टरनेरिया, फोमोप्सिस, सरकोस्पोरा के अन्य प्रजातियों से भी यह रोग हो सकता है।

सड़न से संक्रमित पौधा

प्रभावित पौधों को स्वस्थ पौधों के बीच से तुरन्त हटा देना चाहिए तथा प्रभावित पौधे के स्वस्थ भाग को पौध प्राप्त करने के लिए पुन: रोपण करना चाहिए। इसके साथ हर दस दिन के अन्तराल पर ऑर्थोसिड 50 (0.02%) या पोंमासॉल फोंटे (0.02%) का छिड़काव करना चाहिए। बचाव का सबसे आवश्यक तरीका यह है कि इसके बीज को रोगाणुओं से मुक्त कर लिया जाय।

हेलमिन्थोस्पोर्टियम के अलावे कैक्ट्स के तने का सड़न ड्रेकश्लेरा कैक्टिभोरा कवक के द्वारा भी पौधे के आधार या शीर्ष पर होता है। जो अन्दर के तरफ धसे तथा भूरे बीजाणु से अच्छादित ममी के रुप में दिखता है। शुरुआत में यह पीला धब्बा का लक्षण दर्शाता है। इससे रोग-ग्रस्त पौधा चार दिन में पूर्ण रुप से सड़ जाता है। बचाव में कैप्टॉन का छिड़काव करना लाभकारी होता है।

रूट-नेक राट (गर्दन-जड़ सड़न)

राट (सड़न) वैसे तो पौधे के किसी भी भाग में हो सकता है परन्तु, गर्दन-जड़ सड़न फायटोफ्थोरा इनफेस्टैंस कवक से होता है। तने का प्रभावित भाग मुलायम एवं उससे पानी निकलता है। पौधा एक तरफ झुक जाता है। यह रोग पौध के साथ-साथ पौधे को भी संक्रमित कर देता है। इस तरह यह एक जानलेवा रोग होता है। अगर ऐसा लक्षण दिखता है तो मूल पौधे को बचा पाना मुश्किल होता है। स्वस्थ भाग के साथ प्रभावित अंगों को काटकर अलग करने के उपरांत अच्छी तरह सुखा कर पुन: रोपण करना चाहिए।

संक्रमित पौधा में लिफ स्पॉट का लक्षण

कॉटन रुट राट

यह रोग फाय्मेटोट्राईकम ऑमनिभोरम कवक के कारण होता है तथा कैक्टेसी कुल के अनेक सदस्य इसके संक्रमण से अतिसंवेदशील होते हैं। संक्रमित पौधे मर जाते हैं। प्रभावित पौधे को जब जमीन से बाहर खींचा जाता है तब कवक का भूरा तंतु उसके जड़ व जड़-विन्यास के ऊपर जीवित पाया जाता है। इसका कोई रासायनिक उपचार उपलब्ध नहीं है।

2. धब्बा रोग

लिफ स्पॉट (चित्ती पत्ति)

कैक्ट्स चित्ती पत्ति रोग से भी प्रभावित होते हैं। इनका बचाव करने का तरीका आसान होता है। तापमान तथा आर्द्रता की मात्रा को

इनके आवश्यकतानुसार रखना चाहिए। पत्ते का प्रभावित भाग पीला-भूरा या कभी गहरा लाल-भूरा जो पौधे के सतह से अन्दर की तरफ पिचका हुआ होता है। ऐसे पत्तों को पहले चुन अलग कर बाद में विसंक्रमित चाकू से उसके आधार को भी काटकर निकाल देना चाहिए।

चारकोल धब्बा

चारकोल धब्बा रोग टेक्सास में ऑपन्सिया कैक्ट्स में स्टिर्भेसिया (डिप्लोथिका) रिघटी तथा मैक्रोफोमिना फेसिओलिना कवक द्वारा होने वाला एक सामान्य तथा घातक रोग है। सामान्यत: छोटा धब्बा शुरु में इंच के चौथाई या अत्यधिक व्यास का होता है। इसके धब्बे के चारों तरफ छोटे बिन्दु से बना एवं उभरा हुआ वलय होता है। बाद में यह धब्बा बढ़ने पर एक-दूसरे से अलग हो जाता है। इसका कोई उपचार उपलब्ध नहीं है सिवाय रोग-ग्रस्त पौधों को नष्ट करने के।

3. पाउडरी मिलडीयू

इनमें कवक द्वारा पाउडरी मिलडीयू रोग कैक्ट्स (जैसे क्रैसुला तथा युफोर्बिया) के अलावे अन्य पौधों में भी पैदा होना सामान्य बात है। गीला एवं आर्द्र वातावरण इसके फैलाव या उत्पन्न होने में सहायक होता है। इसके रोक-थाम में कवकनाशी काफी लाभकारी होता है। संक्रमित पौधे उपचार उपरांत सामान्य पौधों की तरह नहीं बढ़ता या फलता-फूलता। इस प्रकार बाद में इससे कोई लाभ नहीं मिलता।

4. भूरा फफूँद या बोट्रिटिस

भूरा फफूँद या बोट्रिटिस, पाउडरी मिलडीयू की तरह ही दिखता है। पर यह उन पौधों में होता है जो पहले से काफी कमजोर होते हैं। जैसे कैक्टेई बोट्रिटिस सिनेरिया से रोग-ग्रसित होता है। इसके प्रसार या विस्तारण को रोकने के लिए संक्रमित पौधा को अलग करने के साथ प्रभावित अंगों को काँटकर नष्ट कर देना चाहिए। इसके बीजाणु के अंकुरण को टेल्डोरोम, सेप्रोलोम, रोनिलॉन-एफएल या सुमिलेक्स ५०-एफएल से उपचार कर बचाया जा सकता है।

5. डैम्पिंग ऑफ रोग

'डैम्पिंग ऑफ रोग' अन्य बीज-धारक पौधों के नवजात पौध की तरह कैक्ट्स को प्रभावित करता है। संक्रमण वाले स्थान पर मिट्टी के सतह पर सफेद कवक का जाल दिखता है। इस रोग को रोकने के लिए रोपण के समय सही एहतियात बरतने से नियंत्रित किया जा सकता है। जैसे विसंक्रमित गमले का व्यवहार करना। इसके लिए, गमला को पूरी तरह ब्लीचिंग पाउडर तथा पानी के घोल में कुछ देर डुबाकर रखना अच्छा उपाय है। बीज के रोपण के समय विसंक्रमित मिट्टी एवं अन्य सामग्री का व्यवहार करना चाहिए।

नवजात कैक्ट्स के पौध में डैम्पिंग ऑफ रोग कवक के संक्रमण के कारण होता है। जिसे ताम्र कवकनाशी के प्रयोग से कुछ हद तक बचाया जा सकता है। चीनोसॉल का इस्तेमाल भी किया जा सकता है परन्तु, पौध के ऊपर इसके दुष्प्रभाव के कारण इसके उपयोग के लिए सलाह नहीं दिया जाता।

6. एंथ्रेक्नॉस

एंथ्रेक्नॉस कैक्टेई में कवक के दो प्रजाति जैसे ग्लोमेरेला सिंगुलाटा तथा कोलेटोट्रायकम ग्लिओस्पोरिऑय्ड से होता है जो इसकी कई प्रजातियों जैसे

एंथ्रेक्नॉस का लक्षण

सेरेय्स, इकिनोकैक्ट्स, मामिलेरिया तथा ऑपन्सिया को रोग-ग्रसित कर देता है। संक्रमण के कारण नम हल्का-भूरा सड़न पैदा होता है जिसके कारण पौधे के सतह पर यह असंख्य गुलाबी दाने जैसा दिखता है। ये दाने पहले छोटे तथा बाद में बढ़कर छोटे बीजाणुओं से ढ़क जाते हैं। इसके अलावे इस रोग का लक्षण गोलाकार, अन्दर पिचका हुआ, गंदला या भूरे रंग का दाग जहाँ पौधे का ऊतक सूखकर कड़ा तथा पेड़ की छाल की तरह होता जाता है। यह पौधे के काफी बड़े भाग को सिर्फ प्रभावित ही नहीं करता वरण उसे मार भी डालता है।

इसके उपचार के लिए कोई संतोषजनक उपाय की जानकारी उपलब्ध नहीं है। संरक्षणालय (ग्रीनहाउस) में संक्रमित पौधे के मिट्टी को निकालकर रोगाणुओं से मुक्त करना चाहिए। इसके अलावा शुरुआत में संक्रमित पौधे के रोग-ग्रस्त भाग को चाकू से काटकर बचे स्वस्थ भाग को बार-बार लौ के ऊपर या अल्कोहल में डुबाकर रोगाणु-रहित किया जा सकता है। रासायनिक उपचार के लिए सेप्रॉल (0.15%), मानेब (0.2%), डाईथेन या ऑर्थोसिड 50 का छिड़काव लाभकारी होता है।

7. छर्रा-छिद्र (शॉट-होल) रोग

छर्रा-छिद्र (शॉट-होल) रोग सबसे अधिक संघातिक रोग होता है। पूर्ण विकसित अवस्था में यह ऑपन्सिया समूह के कवलिका (पैड) के सदृश्य दिखता है। यह रोग एक एंथेक्नॉस है तथा अत्यधिक आर्द्रता वाले महीने में काफी सक्रिय होता है। सबसे पहले यह भूरापन लिए हुए धब्बा सा होता है। जो बाद में सूखे बाह्य आवरण के नीचे स्लेटी से काले बीजाणु में बदल जाता है। जिस कवलिका पर इस रोग के लक्षण दिखते हैं उन्हें पूर्णत: नष्ट कर देना रोग को आगे बढ़ने देने से रोकने का सबसे अधिक कारगर उपाय है या अगर पौधा दुर्लभ है तो सिर्फ रोग-ग्रस्त भाग को काँटने के उपरांत अलग कर नष्ट करने के बाद बचे पौधे या उसके भाग को धूप या धूप की दिशा में रखने से रोगाणुओं से मुक्त किया जा सकता है।

8. स्कोर्च या सनस्केल्ड

स्कोर्च या सनस्केल्ड हेंडरसोनिया ऑपन्सिए कवक के कारण काँटेदार नाशपाती कैक्ट्स 'ऑपन्सिया' में होने वाला एक सामान्य तथा खतरनाक रोग होता है। पहले धब्बा स्पष्ट क्षेत्रों में विभाजित होता है जो बाद में बड़ा होकर पूरे कवलिका को लाल-भूरा बना देने के बाद उसे मार भी देता है। रोग का मध्य भाग स्लेटी-भूरा होने के साथ ही उसमें दरार भी पैदा करता है। इन दरारों में अन्य कवक भी हो सकते हैं। इस रोग का कोई उपचार अभी उपलब्ध नहीं है।

9. कवक के अन्य रोग

ऊपर उल्लेखित कवक रोगों के अतिरिक्त निम्न कवक रोगाणुओं से भी कैक्टेई में अन्य रोग हो सकते हैं जो निम्नलिखित इस प्रकार हैं:

- ऑर्मिलेरिया टेबेसेंस से ऑर्मिलेरिया जड़ सड़न,
- बाय्पोलेरिस कैक्टिभोरा से बाय्पोलेरिस ब्लाईट तथा
- डाय्कोटोमोफ्थोरा जाति से टिप ब्लाईट।

वनस्पति वाणी अंक 28: 27-29 (2019)
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

बिलगिरी रंगास्वामी मंदिर वन्यजीव अभयारण्य, कर्नाटक की कवक सम्पदा

रश्मि दुबे, श्रेया सेनगुप्ता चॅटर्जी एवं अमित दिवाकर पाण्डेय
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

गिरीमाला भगवान रंगनाथ / वेंकटेश के मंदिर के लिए प्रसिद्ध है, जो कि गिरीमाला के सर्वोच्च 'श्वेत' शिखर पर स्थित है, जिससे इसे अपना नाम मिलता है (श्वेत गिरी का कन्नड अनुवाद 'बिलिगिरी' है)। बिलगिरी मंदिर के आसपास के 322.4 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र को बिलगिरी रंगस्वामी टेम्पल वन्यजीव अभयारण्य के रूप में 27 जून 1974 को घोषित किया गया था। 14 जनवरी 1987 को विस्तारोपरांत इसका क्षेत्रफल बढ़कर 539.52 वर्ग किलोमीटर हो गया। अभयारण्य की पहाड़ियां चामाराजानगर जिला, कर्नाटक के येलंदुर , कोल्लेगल और चामाराजानगर तहसिल में स्थित हैं। वे दक्षिण में तमिलनाडु के इरोड जिले के सत्यमंगलम वन्यजीव अभयारण्य की पहाड़ियों के साथ संलग्न हैं। जैव-भौगोलिक दृष्टि से बिलगिरी रंगास्वामी वन्यजीव अभयारण्य अनोखा है। यह 11°40'- 12°09' उत्तर और 77°05'- 77°15' पूर्व के बीच में स्थित हैं तथा पहाड़ियों की चोटियाँ उत्तर-दक्षिण की दिशा में जाती हैं। बिलगिरि रंगन गिरीमाला पश्चिमी घाट के पूर्वी छोर पर स्थित हैं और विविध वनस्पति और पशु वर्ग की वृद्धि के लिए अनुकूल विभिन्न प्राकृतिक परिवेश प्रदान करती है। यहाँ पर स्थित चंपा *मैग्नोलिया चंपाका* का विशाल वृक्ष, जिसे स्थानीय भाषा में 'दोड्डासंपिगे' के नाम से जाना जाता है, भारत के सोलीगा समुदाय के लोगों द्वारा पवित्र निकुंज के रूप में माना जाता है। अभयारण्य में कुल 776 प्रजाति की उच्चवर्गीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। जलवायु परिस्थितियों के साथ साथ गिरी श्रंखला की ऊंचाई की विविधता के कारण अपेक्षाकृत छोटी जगह (अभ्यारण्य) में लगभग सभी मुख्य प्रकार के वन (झाड़ीनुमा, पर्णपाती, तटवर्ती, सदाबहार, शोला और घासस्थल) और उनके अंतर्गत लगभग सभी प्रकार के प्राकृतिक वास पाए जाते हैं। पहाड़ियाँ और अभयारण्य जैव-विविधता से संपन्न हैं। 540 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में, अभयारण्य में विविध प्राकृतिक वास एक अनूठा वर्षा वन बनाते हैं। यह उत्तर-पूर्व दिशा में पश्चिमी घाट का प्रक्षेपण है और पूर्वी घाटी की पहाड़ियों को 78° पूर्व पर मिलती हैं। पश्चिमी घाट का यह अनोखा विस्तार पूर्वी और पश्चिमी घाट के बीच एक पुल का काम करता है, जिसके बीच में यह अभयारण्य स्थित है। अपनी भौगोलिक स्थिति के फलस्वरूप बिलगिरि रंगन गिरीमाला पूर्वी और पश्चिमी घाट के प्राणियों को पारस्परिक स्थानांतरण एवं अनुवांशिक विनिमय का अवसर प्रदान करती है। इन उच्च गिरीमाला की चोटियों की ऊंचाई अधिकतम 1800 मीटर (समुद्र सतह से ऊपर) तक है | इसका सर्वोच्च शिखर कट्टारी बेट्टा है | विभिन्न अवलोकन बिलगिरि रंगन पहाड़ियों और नीलगिरि गिरीमाला के बीच एक संभावित जैवभौगोलीय कड़ी की तरफ इंगित करते हैं। इस प्रकार, बी.आर.टी. (बिलगिरी रंगस्वामी टेम्पल) अभयारण्य की जैव-विविधता मुख्य

बिलीगिरी रंगास्वामी मंदिर वन्यजीव अभयारण्य स्थित गुंदल बाँध।

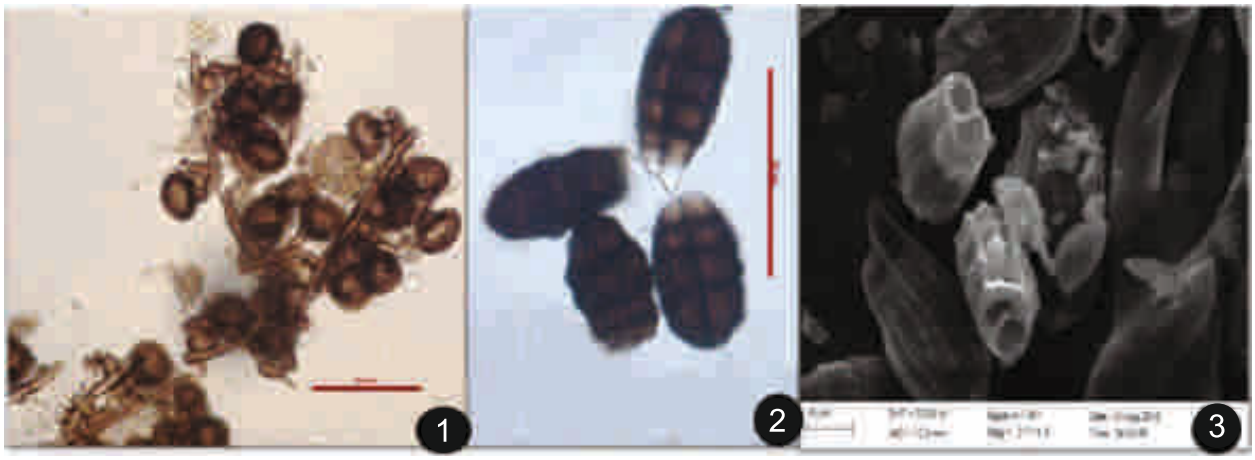

कोलेमॅनिएल्ला बिलीगिरिएन्स:1. *प्यालारूप कोनिडीओजिनस* कोशिकाएं; 2. *इष्टिकापुंजाभ कोनिडीआ*; 3. *स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप*;

रूप से पश्चिमी घाट की होने के साथ साथ पूर्वी घाट के तत्वों की महत्वपूर्ण अनुपात रूप में होने की अपेक्षा की जा सकती है।

बी.आर.टी. में जीवों और सूक्ष्मजीवों के विभिन्न श्रेणियों में, कवक अनोखे और अज्ञात सूक्ष्मजीवों की एक विशाल श्रेणी हैं, जो संभावित अनुप्रयोगों के लिए खोजे जा सकते हैं। अभयारण्य के उच्चवर्गीय वनस्पतियों के अध्ययन पर रिपोर्ट उपलब्ध हैं, लेकिन इसकी कवक सम्पदा पर कोई अध्ययन किया गया था। फलस्वरूप, अभयारण्य की कवक विविधता का अध्ययन करने के लिए 4 वर्ष की अवधि का अनुसन्धान कार्य आरंभ किया गया था।

सामग्री और तरीके

- सर्वेक्षण और नमूनों का संग्रह
- प्रतिचय विवरण (सम्मिलित भौगोलिक क्षेत्र) - एक वर्ष के सर्वेक्षण के दौरान बीआरटी के विभिन्न पारिस्थितिक रूप से

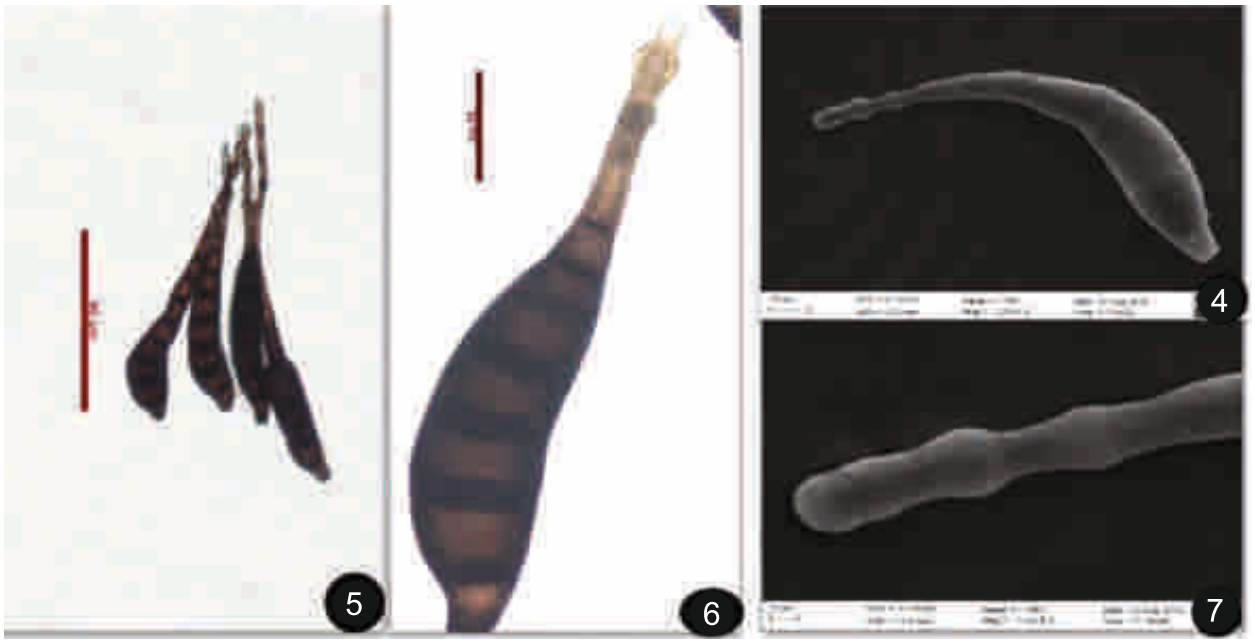

स्पोरिडेस्मियम बिलीगिरिएन्स: 1-2. *कोनिडीआय* एस.इ. ऍम. छायाचित्र; 3. *कोनिडीआ*; 4. *कोनिडीआ* का पुच्छ छोर

अलग-अलग प्राकृतिक वासों का एक बार सभी तीन ऋतुओं में विस्तृत और सामयिक सर्वेक्षण किया गया था।

- नमूनों का संग्रह और प्राथमिक प्रसंस्करण
- प्रयोगशाला प्रसंस्करण
- रोगग्रस्त नमूनों का प्रसंस्करण और संरक्षण
- पौधों के संक्रमित भागों से कवक का पृथककरण

कवक कल्चर का संरक्षण रोगाणुओं के स्टॉक कल्चर को पीडीए स्लांट पर भी बनाए रखा जाता है और 4 डिग्री सेल्सियस पर रेफ्रिजरेटर में संग्रहीत किया जाता है बीएसआई, डब्ल्यूआरसी, पुणे में कल्चरों की क्रमिक व्यवस्था करके जमा की जाती है।

परिणाम और चर्चा: अभी तक की लगभग 110 प्रजातियों की पहचान की गई और उनमें से दो विज्ञान के लिए नए हैं शोध के दौरान कई निम्नलिखित आकर्षक कवक भी दर्ज किए गए थे:

कॉरिनेस्पोरा मॉस्सीएनम, *मूरेल्ला स्पेशियोसा*, *गोनीट्राईकम मैक्रोक्लाडम*, *एक्सोस्पोरियम मोनॅन्थोटॅक्सीस*, *आर्थ्रिनियम अर्टिके*, *स्टॅकिबोट्रीस प्रॉलिफरेटा*, *बेल्ट्रॉनिएल्ला स्पाइरॅलिस*, *मायकोहाइपलेज कॉन्जेस्टा*, *स्पेगॅज़िनिया सुंदरा*, *नेक्ट्रिया अक्वीफ़ोली* इत्यादि।

वानस्पतिक संपदा में सामान्य रूप से पाये जाने वाले कुछ कवक (जिनका पृथककरण किया गया) निम्नलिखित हैं – *मोनोडिक्टिस पुत्रेडिनिस*, *मेम्नोनिएला लेविस्पोरा*, *डिक्टीओअॅर्थ्रीनिअम सॅकरी*, *एपिकोक्म पुरपुरसेंस*, *ट्राईकोथीशियम एक्स्सेंट्रीकम* इत्यादि।

नई खोज :

- **नई प्रजातियां:**

1. *स्पोरिडेस्मियम बिलीगिरिएन्स*
2. *कोलेमॅनिएल्ला बिलीगिरिएन्स*

- **पश्चिमी घाट के लिए नया रिकॉर्ड:**

1. *एक्सोस्पोरियम मोनॅन्थोटॅक्सीस*
2. *कॉरिनेस्पोरा मॉस्सीएनम*

इस प्रकार, यह अभयारण्य पूरे दक्कन पठार के जैव विविधता के लिए एक महत्वपूर्ण जैविक पुल के रूप में कार्य करता है।

शैवाल से संबंधित कुछ रोचक वैज्ञानिक तथ्य

एस.के. यादव एवं संजय कुमार

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

शैवाल जिसे सामान्यतः 'काई' भी कहते हैं, वनस्पति जगत का सबसे प्राथमिक पौधा है। इसकी संरचना बहुत ही साधारण होती है एवं मुख्यतः जलीय वातावरण में पाए जाते हैं। पूरी दुनिया में शैवाल की लगभग 72,500 जातियाँ अनुमानित है, जिसमें से लगभग 45,000 जातियाँ अभी तक प्रकाशित हो चुकी है। इन शैवालों में लगभग 11,000 शैवाल समुद्री दीर्घ शैवाल हैं, जिन्हें 'सीवीड्स' कहते हैं, जबकि शैवालों की अधिकांश जातियाँ मीठे पानी में पायी जाती हैं, जिन्हें मीठा पानी शैवाल कहते हैं। भारत में अभी तक मीठे जल शैवाल की लगभग 7434 जातियाँ,जबकि सीवीड्स की लगभग 865 जातियाँ पाई जाती हैं।

जलीय पारिस्थितिकी में शैवाल बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। स्वपोषी होने के कारण यह प्रकाश संश्लेषण द्वारा ऑक्सीजन को उत्सर्जित कर जलीय वातावरण में ऑक्सीजन की मात्रा को संतुलित रखते हैं, जो जलीय जीवों के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा जलीय खाद्य श्रृंखला में प्राथमिक उत्पादक के रूप में योगदान देते हैं। इस तरह से यह जलीय पारिस्थितिकी को संतुलित रखते हैं। शैवाल से संबंधित कुछ रोचक जानकारियाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जो इस प्रकार है

1. इलिसिया क्लोरोटिका : यह एक छोटे आकार का समुद्री स्लग (गैस्ट्रोपॉड) जंतु है जिसे सामान्यतः 'सी-स्लग' कहते हैं। हम जानते हैं कि पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी जंतु परपोषी होते हैं। लेकिन इस सी-स्लग की कुछ प्रजातियाँ ऐसी हैं जो आश्चर्यजनक रूप से स्वपोषी होता है। यह सी-स्लग छोटे-छोटे शैवालों (मुख्यतः वाउचेरिया शैवाल) को खाती है एवं उनके कोशिका में उपस्थित क्लोरोप्लास्ट को अपने शरीर में अवशोषित कर अपना भोजन स्वतः बनाती है। इस जैविक प्रक्रिया को क्लेप्टोप्लास्टी कहते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि इलिसिया *क्लोरोटिका जंतु* जगत में अद्वितीय स्थान रखती है जो स्वपोषी होता है।

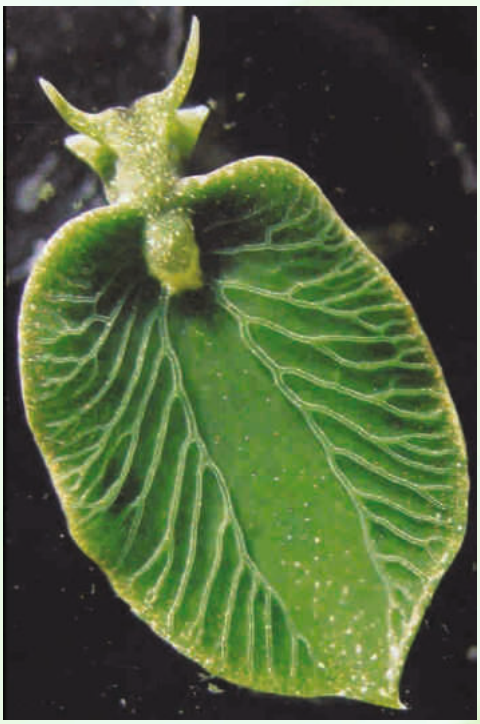

इलिसिया क्लोरोटिका: एक जंतु प्रकाश संश्लेषी शैवाल

2. क्लोरेल्ला - एक अंतरिक्ष शैवाल : क्लोरेल्ला को अंतरिक्ष शैवाल भी कहा जाता है। यह एक कोशिकीय, सूक्ष्मदर्शी हरा शैवाल है जो आकार में सामान्यतः गोलाकार होता है। इस शैवाल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रकाश संश्लेषण की क्षमता काफी अधिक होती है जिसके कारण यह तेजी से भोजन तैयार करती है एवं अधिक मात्रा में ऑक्सीजन उत्सर्जित करती है। क्लोरेल्ला की कोशिका में श्वसन एवं इसकी शारीरिक गतिविधियों के अध्ययन के लिए सन 1931 ई. में एक जर्मन वैज्ञानिक ओ.एच. वारबर्ग को फिजियोलॉजी का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। दुनियाभर में इस शैवाल पर अनेक अध्ययन किया गया है। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' ने अपने अध्ययन में पाया कि इस शैवाल को अंतरिक्ष मिशन के दौरान कृत्रिम वातावरण में भी आसानी से ले जाकर उसे उगाया जा सकता है जिससे वहाँ ऑक्सीजन की जरुरत पूरी करने एवं अंतरिक्षयात्रियों द्वारा छोड़े गए कार्बनडाइऑक्साइड को नियंत्रित करने में मदद मिल सकती है, इसलिए इस शैवाल को अंतरिक्ष शैवाल भी कहा जाता है। इसके अलावा, यह शैवाल अनेक तरह के पौष्टिक तत्वों से भरपूर होते हैं, इसलिए इसे आहार पूरक (फ़ूड सप्लीमेंट) के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

3. स्पीरुलिना : यह एक नील-हरित शैवाल है जो अति सूक्ष्म होता है। इस शैवाल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पौष्टिक तत्वों से भरपूर होने के कारण बड़े पैमाने पर फूड सप्लीमेंट के रूप में इस शैवाल का उपयोग किया जाता है। इसमें अनेक तरह के विटामिन, प्रोटीन एवं एंटी-ऑक्सीडेंट तथा एंटी इंफ्लामेटरी गुण पाया जाता है। इसलिए बाजारों में आजकल स्पीरुलीना टेबलेट एवं अन्य कई तरह के उत्पाद उपलब्ध हैं।

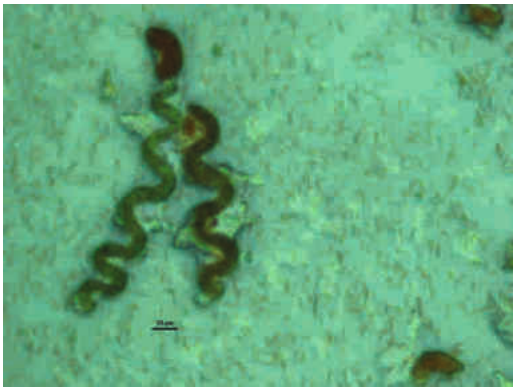

एक नील-हरित शैवालः *स्पीरुलिना*

4. सर्गासम शैवाल एवं केल्प फारेस्ट: सर्गासम एक समुद्री भूरा शैवाल है जो आकार में काफी बड़े, मजबूत एवं लगभग 3 मीटर तक लम्बे होते हैं। दुनियाभर में इस शैवाल की लगभग 427 प्रजातियां पायी जाती है,जिसमें से भारत में लगभग 83 प्रजातियां प्रकाशित हो चूकि है। सर्गासम शैवाल से संबंधित एक रोचक जानकारी यह है कि अटलांटिक महासागर में स्थित 'सर्गासो समुद्र' में इस शैवाल की अद्वितीय विविधता एवं काफी प्रचुरता है जिसके कारण दूर से देखने पर इस समुद्र की सतह सामान्यतः भूरे रंग की प्रतीत होती है। इसलिए इस समुद्र को 'सर्गासो सी' कहा जाता है। ये शैवाल आकार में बड़े होते हैं एवं कुछ अन्य बड़े शैवालों के साथ मिलकर समुद्री पारिस्थितिकी में जंगल की तरह घने एवं पादप विविधता का निर्माण करते हैं जिसे 'केल्प' जंगल कहा जाता है। ये केल्प जंगल प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा जल में ऑक्सीजन की मात्रा को संतुलित रखने एवं जलीय जीवों जैसे मछलियाँ, मोलस्क इत्यादि के लिए भोजन एवं प्रजनन हेतु अनुकूल वातावरण प्रदान कर जलीय पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सर्गासमः एक समुद्री शैवाल

5. कप्पाफाइकस: कप्पाफाइकस एक समुद्री लाल शैवाल है जो आर्थिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण होता है। इस शैवाल से 'कप्पा' नामक काराजीनन (जो की एक तरह का प्राकृतिक कार्बोहाइड्रेट है) पाया जाता है। ये कप्पा काराजीनन खाद्य पदार्थों में इमल्सीफाइड जेलिंग एवं थिकनिंग एजेंट के रूप में फार्मास्युटिकल उद्योगों, सौंदर्य प्रसाधन उद्योगों इत्यादि में उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, इस शैवाल में बायोमास की मात्रा अधिक पायी जाती है जिससे जैव ईंधन प्राप्त किया जाता है। (खम्भाती एवं साथीगण, 2012) इस शैवाल के आर्थिक महत्त्व को समझते हुए आजकल हमारे देश के कई तटीय क्षेत्रों में इस शैवाल की कृत्रिम खेती भी की जा रही है।

6. डायटोमस मिट्टी या डायटोमाइट: यह समुद्र या मीठे जल में पाए जाने वाले अति सूक्ष्म शैवाल 'डायटम्स'के मरने के बाद उनके अवशेष से बनते हैं। आजकल डायटम्स मिट्टी को पाउडर के रूप में बनाकर अनेक तरह से उपयोग में लाया जाता है। डायटम्स, जो शैवाल के बेसिलेरियोफाइट वर्ग का सदस्य है, उसमें सिलिका की मात्रा अत्यधिक (लगभग 80%) पायी जाती है। जब ये डायटम्स मर जाते हैं तो यह जलीय पारिस्थितिकी में परत के रूप में जम जाते हैं जिसे फिर बाहर निकालकर, विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा पाउडर के रूप में बनाया।

इस पाउडर का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है। इसे सिलिका से संबंधित विभिन्न उपचारों में, कृषि क्षेत्र में, कीटनाशक रूप में, खाद्य उद्योगों में, टूथपेस्ट बनाने में, हड्डी एवं चमड़े से

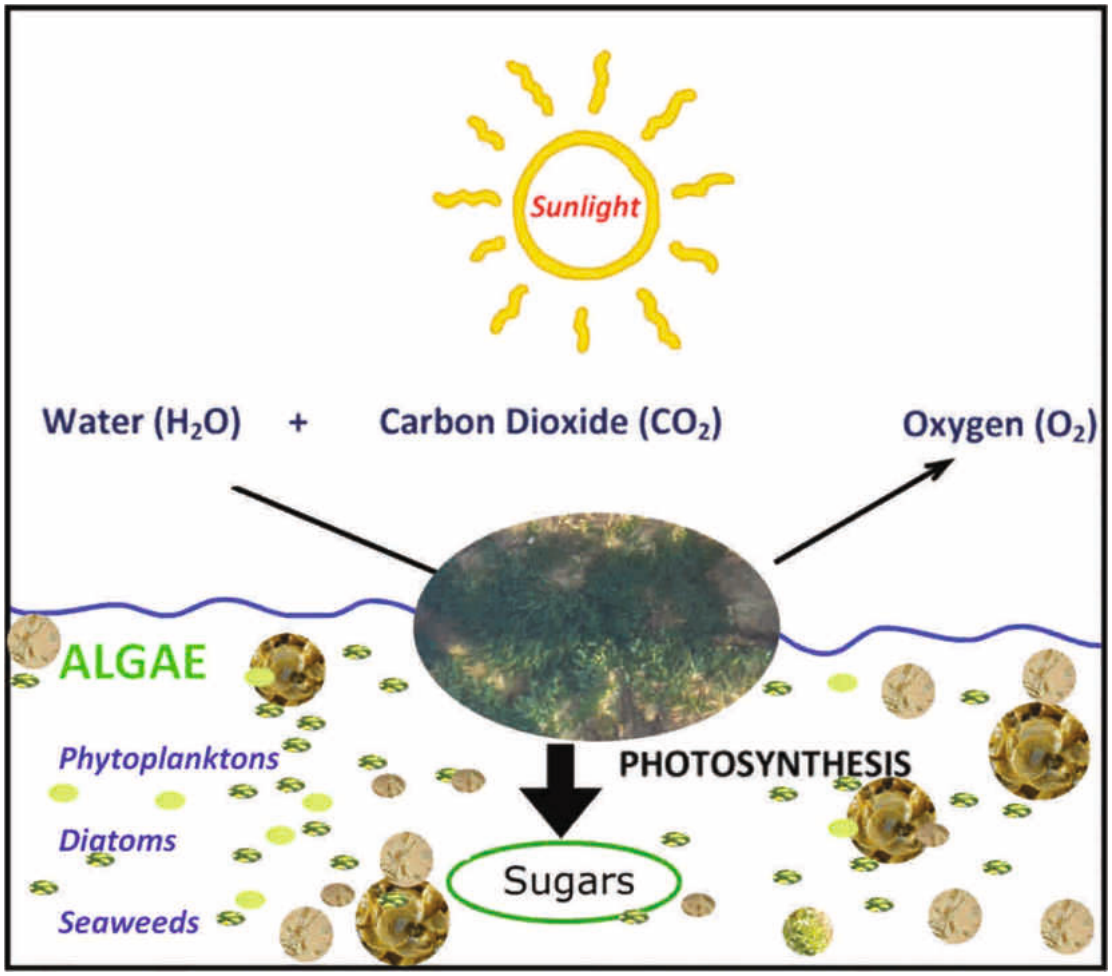

संबंधित रोगों के उपचार में, औद्योगिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के रासायनिक जांच में, हल्के एवं टिकाऊ ईंट बनाने में (जो मुख्यतः बहुमंजिली इमारतों को बनाने में प्रयोग किया जाता है), बिजली उपकरण इत्यादि में किया जाता है। यूरोपीय देशों में इसका उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है। इसकी खोज भी सर्वप्रथम जर्मनी के ही एक किसान ने 1836-1837) के दौरान किया गया था।

निष्कर्ष: आर्थिक दृष्टिकोण से भी शैवाल हमारे लिए काफी महत्वपूर्ण है। पुरे विश्व में शैवालों की लगभग 221 प्रजातियां ऐसी हैं जो आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं एवं वे किसी न किसी रूप में हमारे दैनिक जीवन से संबंधित हैं। ये शैवाल खाद्य उद्योगों में, जानवरों के भोजन के रूप में, श्रृंगार प्रसाधनों में जैव उर्वरक उद्योगों में, दवा निर्माण में एवं फाइकोकोलवाइड्स जैसे अगर -अगर, अल्जिन, अल्गिनेट्स इत्यादि के उत्पादन में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। इसके अलावा शैवालों की अनेक प्रजातियां जैसे नॉस्टॉक, एनाबिना इत्यादि द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन को भूमि में स्थिरीकरण कर भूमि की उर्वरा शक्ति को प्राकृतिक रूप से बनाए रखती है। अतः हम कह सकते है कि शैवाल वनस्पति जगत का प्राथमिक समूह होने के बावजूद भी जलीय पारिस्थितिकी एवं हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कप्पाफाइकस अल्वरेजी की खेती - आजीविका के लिए एक वरदान

पलनीसामी एम. एवं एस. के. यादव

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोयंबत्तूर

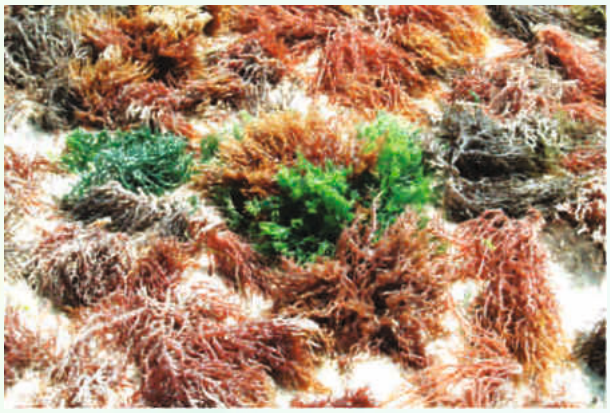

कप्पाफाइकस अल्वरेजी

कप्पाफाइकस अल्वरेजी (डोटी) डोटी एक्स पी.सी. सिल्वा समुद्री लाल शैवाल (रोडोफाईसी) समूह के सोलिरिएसी कुल का पौधा है। वस्तुतः यह एक अस्थानिक पौधा है जो भारतीय समुद्री जल क्षेत्र में फिलीपिंस से वर्ष 1995 के दौरान केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान भावनगर, गुजरात के पूर्व वैज्ञानिक डॉ. पी. वी. सुब्बारॉव के द्वारा लाया गया। प्रारंभ मे इस लाल शैवाल को तमिलनाडु के रामनाथपुरम् जिला के मंडपम तटीय क्षेत्र, जो कि मन्नार की खाड़ी में स्थित है, में प्रायोगिक स्तर पर लगाया गया। केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान के पूर्व वैज्ञानिक डॉ. ओ.पी. मैढ़ (O.P. Mairh) के अनुसार, भारत में जो *कप्पाफाइकस* लाया गया था वो फिलिपिंस नस्ल के ही थे, लेकिन उन्हें जापान से 1984 ई. में लाया गया था। हांलाकि भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पूर्व वैज्ञानिक डॉ. पी.एस.एन. रॉव और सी.एम.एफ.आर.आई. के पूर्व वैज्ञानिक डॉ. पी. उमामहेश्वर राव द्वारा वर्ष 1999 मे इस शैवाल को अण्डमान और निकोवार द्वीप से प्रकाशित किया गया था। इस दौरान केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान के अनेक वैज्ञानिकों जैसे डॉ. सी. आर. के. रेड्डी, डॉ. ईश्वरन, डॉ. वैभव मंत्री इत्यादि ने इस विदेशी शैवाल को भारतीय जलक्षेत्र में विकास की अनुकूलता, स्थानिक शैवाल प्रजातियों पर इसका प्रभाव, कृत्रिम विधि द्वारा इस शैवाल की तटीय क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती की संभावनाएं (मरीकल्चर) एवं इससे स्थानीय लोगो को मिलने वाला आर्थिक लाभ, इत्यादि विषयों पर विस्तृत अध्ययन किया, जिसे समय-समय पर विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया है।

कप्पाफाइकस की कृत्रिम खेती एवं इसका आर्थिक महत्व: *कप्पाफाइकस* की कृत्रिम खेती का पहला प्रयास फिलीपिंस के समुद्री जल में वर्ष 1960 के दौरान प्रो. एम. डोटी (Prof. Maxwell Doty) के नेतृत्व में किया गया था। बाद में इसका प्रचार-प्रसार विश्व के अन्य देशों में हुआ। भारत में इस शैवाल को सर्वप्रथम सी.एस.एम.सी.आर.आई. के वैज्ञानिको द्वारा वर्ष 1984 के दौरान जापान से लाई गई फिलिपिंस नस्ल (origin) की प्रजाति को भारतीय जलक्षेत्र में प्रवेश कराया गया जिसे बाद में कई स्तर पर विभिन्न प्रकार के प्रयास करने के बाद कृत्रिम खेती के लिए प्रोत्साहित किया गया। प्रारंभ में इसकी खेती भारत के पश्चिम तट पर गुजरात के ओखा तट पर वर्ष 1989-1996 के दौरान किया गया जिसे बाद में देश के पूर्वी तट पर तमिलनाडु के मंडपम तटीय क्षेत्र में वर्ष 1995-1997 के दौरान केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों के नेतृत्व में किया गया। धीरे-धीरे इस शैवाल की कृत्रिम खेती का दायरा तटीय क्षेत्रों में बढ़ता गया। आज इस शैवाल की खेती औद्योगिक स्तर पर कई कम्पनियों जैसे पेप्सिको, एक्वाग्री इत्यादि के द्वारा भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। आज शैवाल की कृत्रिम खेती बढ़कर अन्य तटीय राज्यों में भी प्रायोगिक स्तर पर किया जा रहा है। इस प्रकार, यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तटीय इलाकों मे रोजगार को बढ़ावा देने एवं मत्स्य पालन के अलावा रोजगार के अन्य वैकल्पिक स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। *कप्पाफाइकस* से मुख्यतः कराजीनिन का उत्पादन किया जाता है। काराजीवन एक प्रकार का कार्बोहाइट्रेट है जो मुख्यतः खाद्य प्रसंस्करण उद्योगो, डेयरी उद्योग, जैव प्रोद्यौगिकी टूथपेस्ट उद्योग इत्यादि में बडे पैमाने पर उपयोग किया जाता है।अतः *कप्पाफाइकस* अल्वरेजी एक महत्वपूर्ण लाभकारी समुद्री शैवाल है। अतः तटीय क्षेत्रो में *कप्पाफाइकस* अल्वरेजी की कृत्रिम खेती स्थानीय लोगो के लिए बहुत ही लाभकारी एवं जीविका हेतु मछली पालन के अलावा एक वैकल्पिक श्रोत हो सकती है।

कप्पाफाइकस अल्वरेजी के पूर्णतः
विकसित थैलस को संग्रहित करते हुए एक स्थानीय

वनस्पति वाणी अंक 28: 34-38 (2019)
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

विशेष आमंत्रित लेख

भारतीय परम्परा में पादपों का नामकरण

डा. धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी
डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

अमरकोश के अनुसार वृक्ष के अनेक पर्यायवाची शब्दों में एक पादप भी है। 'पादप' यह नामकरण सप्रयोजन है। जिस प्रकार मानवमात्र अन्नादि के द्वारा स्वयं को पुष्ट बनाता है उसी प्रकार पेड़-पौधे भी पृथ्वी से अपनी भोज्य सामग्री ग्रहणकर स्वयं को पुष्ट करते हैं। 'पादैः पिबति इति पादपः' इस व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि ऐसे प्राणधारी जो अपने चरणों से जल एवं अन्य पुष्टिकर पदार्थों को ग्रहण करते हैं, वे पादप कहलाते हैं। यह सर्वविदित तथ्य है कि वृक्षादि अपने मूल रूपी चरणों ही से समस्त आवश्यक तत्त्वों की ग्रहण करते हैं। 'वृक्षों में , जीवन है, चेतनता है'- इस तथ्य को प्रमाणित करने के क्रम में महाभारत में कहा गया है कि जिस प्रकार मनुष्य कमल की नाल मुँह में लगाकर उसके द्वारा ऊपर को जल खींचता है, उसी प्रकार वायु की सहायता से युक्त वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा ऊपर की ओर पानी खींचता है-

वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः।।

(महाभारत-शान्तिपर्ब/184/16)

वृक्ष अपनी जड़ से जो जल खींचता है, उसे उसके अन्दर रहने वाली वायु और अग्नि पचाती है। आहार का परिपाक होने से वृक्ष में स्निग्धता आती है और वे बढ़ते हैं-

तेन तज्जलमादत्तं जरयत्यग्निमारुतौ।
आहारपरिमाणाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते।।

(महाभारत-शान्तिपर्ब/184/18)

संस्कृत वाङ्मय से प्राप्त अनेक सन्दर्भों यह सुस्पष्ट है कि प्राचीन काल में पादपों का जो नामकरण किया गया था वैज्ञानिक और तर्कसंगत था। पादपों का नामकरण की पद्धति जिसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा वह बहुत ही ठोस और दृढ़ आधार पर अवलम्बित है। भारत में वैदिककाल से आरम्भ होकर अद्यावधि पादपों के नामकरण की सुदीर्घ और सुसमृद्ध परम्परा रही है। प्राचीन भारत में पादपों के नामकरण में इस बात का ध्यान रखा जाता था कि वे पादपों के वैशिष्ट्य का प्रकटीकरण कर सकें।

निघण्टु ग्रन्थों में पादपों के नामकरण के आधार को स्पष्ट किया गया है। राजनिघण्टु का अभिमत है-

नामानि क्वचिदिह रूढितः स्वभावाद् देश्योक्त्या क्वचन् च लाञ्छनोपमाभ्याम्।
वीर्येण क्वचिदितराह्वयादिदेशाद् द्रव्याणां ध्रुवमिति सप्तधोदितानि।।

अर्थात् द्रव्यों का निश्चय सात प्रकार से किया जाता है। कहीं पर रुढि अर्थात् प्रसिद्धि से, कहीं स्वभाव से, कहीं पर देशवासियों के कथन से, कहीं पर लक्षण तथा उपमा से, कहीं पर वीर्य से तथा कहीं पर नामों के अतिदेश से द्रव्यों का निश्चय किया जाता है।

वैसे संस्कृत साहित्य में वर्णित पादपों के नामों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि भारतीय परम्परा में उनके नामकरण का आधार अत्यन्त व्यापक है। इनका बिन्दुशः उल्लेख आगे किया जा रहा है। कोष्ठक में पादपों के मूल नाम उल्लिखित हैं। जहाँ कोष्ठक में नामोल्लेख नहीं है, वहाँ सन्दर्भित पादप ही उसका मूल नाम है।

चिकित्सकीय उपयोगिता के आधार पर-

I. वयस्था (आमलकी)- यह युवावस्था को बनाये रखती है।
ii. पिचुमर्द (निम्ब)- यह चर्म रोगों को निर्मूल कर देती है।
iii. वरी (शतावरी)- यह औषधियों में श्रेष्ठ है।

iv. शोथघ्नी (पुनर्नवा)- यह शोथ को नष्ट कर देती है।

v. कृमिघ्न (विडङ्ग)- यह कृमियों को नष्ट कर देती है।

vi. अरिष्ट (रसोन)- यह प्रभावकारी औषधि है।

vii. विरेचनफल (पीलू)- इसका फल विरेचक होता है।

viii. विश्वभेषज (शुण्ठी)- यह अपनी गुणवत्ता तथा सहज उपलब्धता के कारण औषधि के रूप में सामान्य जनमानस के द्वारा प्रयुक्त होती है।

ix. जया (अग्निमन्थ)- यह अनेक रोगों की चिकित्सा में प्रयुक्त होती है।

x. अमला (आमलकी)- यह शरीर को शुद्ध करती है।

xi. कुष्ठसूदन (आरग्वध)- इससे चर्मरोग की चिकित्सा होती है।

xii. हृद्रोगवैरि (अर्जुन)- यह हृदय सम्बन्धी रोगों को दूर करने में अत्यन्त उपयोगी है।

xiii. दीपक (चित्रक)- यह भूख को बढ़ाने में सहायक होता है।

गृहज / आर्थिक / व्यावसायिक उपयोगिता के आधार पर-

i. कार्पास- यह सूती धागे और कपड़े का स्रोत है।

ii. अग्निमन्थ- इसकी लकड़ियों को आपस में रगड़कर आग पैदा की जाती थी।

iii. तूलफल (शाल्मली)- जिसके फल से रुई उत्पन्न होती है।

iv. शकटाक्षः (धव)- जिसकी लकड़ियों का प्रयोग गाड़ी और रथों की धुरी बनाने के लिए किया जाता है।

v. वस्त्ररञ्जनी (मञ्जिष्ठा)- जिसका प्रयोग वस्त्रों को रंगने के लिए किया जाता है।

vi. लेख्यपत्र (ताल)- जिसके पत्रों का प्रयोग पाण्डुलिपियों के लिखने के लिए किया जाता है।

vii. वर्णविलासिनी (हरिद्रा)- प्रसाधन सामग्री के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

viii. धूपवास (अगरु)- इसका काष्ठ सुगन्धित होता है और यह गन्ध द्रव्य के रूप में प्रयुक्त रहता है।

ix. कर्णाभरण (आरग्वध)- इसके पुष्पों को कानों के आभूषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

विशेष सम्बन्ध या रुढ़ि से-

i. बोधिद्रुम (अश्वत्थ)- गौतम बुद्ध ने इस वृक्ष के नीचे आत्मज्ञान प्राप्त किया।

ii. अशोक- इस वृक्ष ने भगवती सीता के शोक को नष्ट किया।

iii. शिवप्रिय (धत्तूर)- यह भगवान् शिव को अत्यन्त प्रिय है।

iv. तापसतरु (इङ्गुदी)- आश्रम में निवास करने के समय इसके बीजों का प्रयोग किया जाता था।

v. शिवेष्ट (बिल्व)- इसे भगवान् शिव को अर्पित किया जाता है।

vi. देवधूप (गुग्गुलु)- देवाराधन के समय धूप के रूप में इसका उपयोग किया जाता है।

vii. पूतपत्री (तुलसी)- इसके पत्ते को पवित्र माना जाता है।

viii. होमधान्य (तिल)- इसका प्रयोग होमकार्य के लिये किया जाता है।

ix. यज्ञाङ्ग (उदुम्बर)- यज्ञ में उदुम्बर का प्रयोग किया जाता है।

x. गायत्री (खदिर)- इसके काष्ठ को पवित्र माना जाता है एवं इसका प्रयोग यज्ञ में किया जाता है।

xi. देवदारु- यह बहुत पवित्र वृक्ष है और देवताओं को अत्यन्त प्रिय है।

xii. कङ्केलि (अशोक)- यह प्रसन्नता का हेतुभूत है।

विशिष्ट लक्षणों के आधार पर-

I. सदापुष्प (अर्क)- इसमें वर्षभर पुष्प लगे होते हैं।

ii. बहुपुष्पिका (धातकी)- इसमें पुष्प बहुलता से प्राप्त होते हैं।

iii. शङ्खपुष्पी (कुटज)- इसके पुष्पों की आकृति शंख की तरह होती है।

iv. वक्रपुष्प (अगस्त्य)- इसके पुष्प वक्र आकृति के होते हैं।

v. गूढ़पुष्प (बकुल)- इसके पुष्प सुगन्धित होते हैं।

vi. शुकपुष्पा (शिरीष)- इसके पुष्पों का रंग शुक के रंग की तरह होता है।

vii. नागपुष्प (नागकेशर)- इसकी पंखुड़ियाँ नाग के फणों की तरह होती हैं।

viii. शाकपुष्प (करीर)- इसके पुष्पों का प्रयोग सब्जियों की तरह होता है।

ix. गुडफल (पीलु)- इसके फल गुड की भाँति मीठे होते हैं।

x. सकृत्फला (कदली)- इस वृक्ष में फल एक बार ही उत्पन्न होता है।

xi. सदाफल (उदुम्बर)- इसमें वर्षभर फल लगे रहते हैं।

xii. कुम्भफला (कुष्माण्ड)- इसके फल की आकृति घड़े की तरह होती है।

xiii. कठिनफल (कपित्थ)- इसके फल दृढ़ होता है।

xiv. गुच्छफला (द्राक्षा)- इसमें फल गुच्छों में लगते हैं।

xv. नीलफला (जम्बू)- इसके फल नील वर्ण के होते हैं।

xvi. अपत्र (करीर)- यह नए अंकुरों पर छोटे पत्ते वाला पौधा है, पुरानी शाखाएं पत्ते रहित होती हैं।

xvii. सहस्रपत्र (कमल)- इसमें विपुल मात्रा में पत्र होते हैं।

xviii. अम्लपत्रिका (चाङ्गेरी)- इसके पत्र अम्ल रस युक्त हैं।

xix. बहुपत्रिका (मेथिका)- इसके पत्र संख्या में अधिक और सघन होते हैं।

xx. दीर्घपत्र (ताल)- इसके पत्र आकार में विशाल होते हैं।

xxi. लेख्यपत्र (ताल)- इसके पत्र का उपयोग पाण्डुलिपि लेखन में होता रहा है।

xxii. शुक्लकन्दा (अतिविष)- इसके कन्द शुक्ल वर्ण का होता है।

xxiii. बहुबीजा (मेथिका)- इसमें विपुल मात्रा में बीज होते हैं।

xxiv. स्नेहबीज (प्रियाल)-इसके बीज तैलीय होते हैं।

xxv. क्षुरच्छद (कुश)- इसके पत्ते अत्यन्त नुकीले होते हैं।

xxvi. क्षीरपर्ण (अर्क)- इसके पत्तों में क्षीर (दुग्ध) होता है।

xxvii. क्षुरक (गोक्षुर)- इसके फल काँटे लिए हुये होते हैं।

xxviii. कण्टकी (बिल्व)- यह काँटेदार वृक्ष होता है।

स्थानीय साहचर्य/उत्पत्ति स्थान के आधार पर-

i. मागधी (पिप्पली)- यह अधिकतर मगध क्षेत्र के नम क्षेत्रों में बढ़ती है।

ii. उत्तरपथा (द्राक्षा)- यह अधिकतर उत्तरी क्षेत्र में ऊँचाई पर बढ़ती है।

iii. कालिंग (कुटज)- यह विशेष रूप से कलिंग में उपजाई जाती है।

iv. काश्मीरा (अतिविष)- यह विशेष रूप से कश्मीर में उत्पन्न होती है।

v. विन्ध्यजाता (विभीतकी)- यह सामान्यतया विन्ध्य क्षेत्र में उत्पन्न होती है।

vi. काण्डोद्भवा (गुडुची)- इसे शाखा के द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है।

आकृति विज्ञान / शरीररचना विज्ञान के आधार पर-

i. अनन्ता (दूर्वा)- यह बड़े पैमाने पर भूमि पर फैलती है।

ii. त्रिवृत्- यह एक आरोहक वनस्पति है जिसके तने त्रिकोणीय और तीन पंखों वाले होते हैं।

iii. दीर्घपत्र (ताल)-इसके पत्र विशाल तथा दृढ़ होते हैं।

iv. कण्टकी (बृहती)- यह काँटा युक्त होता है।

v. शतपदी (शतावरी)- इसके अनेक गूदेदार जड़ होते हैं।

vi. सप्तपर्ण- इसके सामान्यतया सात पत्ते होते हैं।

vii. बहुला (एला)- इसके फल बहुत अधिक बीज वाले होते हैं।

viii. वृत्तफला (आमलकी)- इसके फल गोलाकार होते हैं।

ix. दीर्घफल (आरग्वध)- इसके फल लम्बे होते हैं।

x. वराहकर्णी (अश्वगन्धा)- इसके पत्ते वराह के कान के सदृश होते हैं।

xi. पिण्डपुष्प (अशोक)- इनका पुष्पक्रम गोलाकार होता है।

xii. ग्रन्थिल (बिल्व)- इसकी शाखायें ग्रन्थिल होती हैं।

xiii. दन्तबीज (दाडिम)- इसके बीज दन्त की तरह होते हैं।

xiv. त्रिपत्र (बिल्व)- यह त्रिपर्णक होता है।

रस के आधार पर-

i. रसोन- छः रसों में से यह एक रस (अम्ल रस) से न्यून है।

ii. रसफल (नारिकेल)- इसका फल दृढ़ तथा जल से परिपूर्ण है।

iii. तीक्ष्णतण्डुल (पिप्पली)- इसके बीज स्वाद में कटु हैं।

iv. षड्रसा (आमलकी)- इसके फल में सभी छः रस विद्यमान रहते हैं।

v. रसाल (द्राक्षा)- इसके फल रस से परिपूर्ण होते हैं।

vi. पञ्चरस (हरीतकी)- इसमें लवण को छोड़कर सभी रस प्राप्त होते हैं।

vii. महारस (जम्बू)- यह अत्यधिक रसयुक्त होता है।

viii. कटुतिक्तक (करीर)- इसके पत्र तथा मूल कटु तथा तिक्त रसयुक्त होते हैं।

ix. क्षारश्रेष्ठ (पलाश)- यह उन वनस्पतियों में सर्वश्रेष्ठ है जो क्षार उत्पन्न करते हैं।

x. भूरिरस (इक्षु)- यह पौधा मधुर रस से परिपूर्ण रहता है।

xi. कटुक (मरिच)- यह स्वाद में कटु होता है।

xii. कषायमधुर (धव)- इसका छाल कषाय तथा मधुर रसयुक्त होता है।

xiii. रसालक (दाडिम)- इसके फल रसयुक्त होते हैं।

गन्ध के आधार पर-

i. स्थिरगन्धा (पाटला)- इसके पुष्प स्थिर गन्ध वाले होते हैं।

ii. महागन्ध (कुटज)- इसके फूल तीक्ष्णगन्ध वाले होते हैं।

iii. गन्धराज (चन्दन)- सुवासित पदार्थों में यह सर्वश्रेष्ठ है।

iv. गन्धफल (कपित्थ)- इसके फल का गुद्दा सुगन्धित होता है।

v. गन्धपत्र (बिल्व)- इसके पत्र सुगन्धदायक होते हैं।

vi. सुगन्धि (बीजक)- इसके पुष्प सुगन्धयुक्त होते हैं।

वर्ण (रंग) के आधार पर-

i. पीतसार (असन)- इसका काष्ठ पीतवर्ण का होता है।

ii. स्वर्णाङ्ग (आरग्वध)- इसके पुष्प स्वर्णिम पीतवर्ण के होते हैं।

iii. कृष्णा (पिप्पली)- इसके फुल सूखने पर कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं।

iv. नीलपत्री (नीलिनी)- इसके पत्र नीले रंग के होते हैं।

v. पाण्डरद्रुम (कुटज)- वृक्ष की छाल पीले रंग की होती है।

vi. पीता (हरिद्रा)- इसके प्रकन्द पीत वर्ण के होते हैं।

vii. पीतफल (बृहती)- इसके फल पीले रंग के होते हैं।

viii. धवल (अर्जुन)- इसकी छाल धवल वर्ण की होती है।

ix. रक्तपुष्प (अर्क)- इसके पुष्प रक्तवर्ण के होते हैं।

x. हेमपुष्प (अशोक)- इसके पुष्प स्वर्णिम वर्ण के होते हैं।

xi. ताम्रपुष्पी (पाटला)- इसके पुष्प ताम्रवर्ण का होता है।

परिस्थिति भेद के आधार पर-

i. अम्भोरुह (कमल)- यह जलीय वनस्पति है।

ii. मरुद्भवा (कार्पासी)- इसे शुष्क क्षेत्र में उगाया जाता है।

iii. भूमिसह (शाक)- इसके काष्ठ को सुदृढ़ माना जाता है और यह भारी बोझ को सहने में समर्थ होता है।

iv. हैमवती (हरीतकी)- इसे हिमालय की तराई में विपुल मात्रा में पाया जाता है।

v. नदीसर्ज (अर्जुन)- इसे नदियों के समीप उगाया जाता है।

vi. जलवासा (उशीर)- यह जलस्रोतों के निकट पाया जाता है।

vii. मरुदेश्य (गुग्गुलु)- यह वनस्पति शुष्क क्षेत्रों में पाई जाती है।

viii. नादेयी (अग्निमन्थ)- ये झुण्ड में नदी तटों पर पाये जाते हैं।

ix. ग्राम्या (तुलसी)- यह ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य जनमानस के द्वारा उपजाई जाती है।

x. वनाम्र (कोशाम्र)- इसे वनक्षेत्र में पाया जाता है।

उपमा के आधार पर-

i. मल्लिकापुष्प (कुटज)- इसके पुष्पों की सुगन्ध मल्लिका के पुष्पों के सदृश होती है।

ii. गन्धपत्री (अश्वगन्धा)- इसके पत्तों की गन्ध अश्व के गन्ध की तरह होती है।

iii. इक्षुगन्धा (काश)- इसके तना की सुगन्ध इक्षु के गन्ध की तरह होती है।

iv. मद्यगन्धा (बकुल)- इसके फूलों की सुगन्धि मद्य की तरह होती है।

v. मत्स्याक्षी (ब्राह्मी)- इसके पुष्प मछली के आँखों के सदृश होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वनस्पतियों के नामकरण की भारतीय परम्परा अत्यन्त व्यापक और वैज्ञानिक है।

उत्तराखण्ड के चम्पावत जिले में पर्णोद्भिद का लोक वानस्पतिक महत्व

पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

चम्पावत, उत्तराखण्ड के कुमाऊँ हिमालय में पूर्व में स्थित एक जिला है, जिसका कुल क्षेत्रफल 1766 वर्ग किलोमीटर है। इसमें काली, सरजू, लोहावती, जबगुडा, लधिया, पनार आदि प्रमुख सदानीरा नदियां है। काली नदी, जो नेपाल के साथ भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बनाती है, इसकी पूर्व दिशा में से प्रवाहित होती है। इसके उत्तरी भाग में लघु हिमालय एवं शिवालिक पहाड़ियां जबकि दक्षिण में तराई क्षेत्र एवं गिरीपाद है। इसके उत्तरी भाग में पर्णांगोद्भिद की विविध प्रजातियां बहुतायत में पाई जाती है।

वर्ष 2014 से 2017 की अवधि में वानस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान स्थानीय लोगों, वैद्यों, बुजुर्गो से वार्ता कर प्राप्त जानकारी से पता चला है कि क्षेत्र में पाई जाने वाली पर्णोद्भिदों की विभिन्न जातियों में से 43 जातियों का स्थानीय लोगों द्वारा विविध रूपों में इस्तेमाल किया जाता है। प्रस्तुत पादप सूची में उल्लेखित लोकवानस्पतिक महत्व लेखक के प्रेक्षण एवं क्षेत्र से सम्बन्धित अन्य शोध लेखों जैसे पाण्डे एवं अन्य (1994, 2000), खोलिया एवं पुनेठा (2005), जोशी एवं अन्य (2009), उप्रेती एवं अन्य (2009) में वर्णित जातियों के आधार पर तैयार की गई है। इसमे पादप के वानस्पतिक नाम के साथ पादप कुल, स्थानीय नाम (जहाँ उपलब्ध हैं) तथा लोकवानस्पतिक महत्व प्रस्तुत किया गया है -

1. *एडीएन्टम केपिलस-वेनेरिस* (टेरीडेसी): कालीछडी- इसकी पत्तियों के काढ़े का उपयोग सामान्य खाँसी-जुकाम को ठीक करने तथा मुंह के छालों के उपचार के लिए इन्हें चूसा जाता है।

2. *एडीएन्टम एग्वर्थाई* (टेरीडेसी): हंसराज- प्रपर्ण के काढ़े का उपयोग मुंह के छालों एवं श्वसन विकार में किया जाता है।

3. *एडीएन्टम इन्सीजम* (टेरीडेसी): हंसपदी, वायुवीय भाग के काढ़े का उपयोग खाँसी-जुकाम, मधुमेह, ज्वर तथा त्वचा विकार के उपचार के लिए किया जाता है।

4. *एडीएन्टम फिल्लीपेन्स* (टेरीडेसी): हंसराज, इसके सम्पूर्ण वायुवीय भाग के काढ़े का उपयोग खाँसी, दमा, ज्वर, कोढ़ तथा बालों को झड़ने से रोकने के लिए किया जाता है। पर्णवृन्त, जिसमें पूर्तिरोधी गुण होते हैं, के छोटे-छोटे टुकडों को बालिकाएं कान एवं नाक में पहनती है, जिसे सिणुका कहते है।

5. *एडीएन्टम वेनुसिटम* (टेरीडेसी): काला हंसराज, हंसपदी। प्रपर्ण का काढ़ा बुखार होने पर रोगी को दिया जाता है। इसे बलवर्धक, कफोत्सारक, मूत्रविकार एवं वमनकारी औषधी के रूप मे भी इस्तेमाल किया जाता है।

6. *एल्युरिटोप्टेरिस अल्बोमारजीनेटा* (टेरीडेसी): प्रकन्द का काढ़ा खांसी-जुकाम एवं बुखार में काम में लिया जाता है जबकि प्रपर्ण का काढ़ा पूतिनाशक (एंटीसेप्टिक), प्रतिजीवाण्विक तथा बलवर्धक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

7. *एल्युरिटोप्टेरिस बाइकॅलर* (टेरीडेसी): मान्यता है कि छोटे बच्चों को बुरी आत्माओं से दूर रखने के लिए सूखे हुए पौधे के चूर्ण की गाय के घी के साथ धूप दी जाती है। इसके पर्णवृन्त के छोटे-छोटे टुकडों को भी बालिकाएं और महिलाएं कान एवं नाक में बालियों एवं कर्णफूल के तौर पर पहनती हैं। प्रपर्ण की निचली सतह के चमकीले पाउडर से बच्चे अपने शरीर पर सुन्दर छाप बनाते हैं।

8. *आर्थोमेरिस वालिचिआना* (पोलिपोडीएसी): इसके उबले हुए प्रकन्द के रस को उबले चावल के रस के साथ मिलाकर पेचिश के रोगी को दिया जाता है।

9. *एस्प्लेनियम डलहाउजी* (एस्प्लिनिएसी): टायफाइड के रोगी को प्रपर्ण का काढ़ा दिया जाता है।

10. अथायरियम शिम्पेरी (वुडसिएसी): तरूण प्रपर्ण की सब्जी बनाई जाती है तथा मवेशियों के चारे के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है।

11. *अथायरियम स्ट्रिजीलोसम* (वुडसिएसी): तरूण प्रपर्ण मवेशियों के चारे तथा सूखी हुई मवेशियों के लिए छाया करने के छप्पर बनाने के काम में ली जाती है।

1. *टेरिडियम रिवोल्यूटम* के उपयोग के बारे मे बताते हुए एक स्थानीय निवासी, 2. पूर्णागिरी देवी के मेले में बेचने के लिए रखा गया *सिलेजिनेला ब्रायोप्टेरिस*, 3. *नेफ्रोलेपिस कोर्डिफोलिया* के कन्द, 4. *ओडोंटोशोरिया चाइनेन्सिस*, 5. *एडीएन्टम फिल्लीपेन्स*, 6. सड़क के किनारे *डिप्लेजियम मेक्सिमम* को बेचते हुए स्थानीय युवा एवं इन्सेट मे लुंगडु का आचार

12. *बोट्रीकियम लेनुजीनोसम* (ऑफियोग्लोसेसी): कुतुर्का/कटुर्का। तरूण प्रपर्णों से सब्जी बनाई जाती है तथा प्रपर्ण व प्रकन्द का काढ़ा पेचिश के उपचार मे प्रयुक्त होता है। प्रकन्द की लेई को जलने से हुए घाव पर लगाया जाता है।

13. *क्रिश्चेला डेन्टाटा* (थेलीप्टेरीडेसी): रून्या। तरूण प्रपर्ण मवेशियों के चारे के लिए तथा सूखी हुई प्रपर्ण मवेशियों के छप्पर में नीचे बिछाने के काम मे ली जाती है।

14. *डाईक्रानोप्टेरिस लेनिजेरा* (ग्लिचिनिएसी): ऊनेर/ऊनेरी। इसके काढ़े मे विरेचक गुण होने के कारण उदर कृमि नाशक के रूप मे काम मे लिया जाता है। सूखी हुई प्रपर्ण छप्पर बनाने के काम मे ली जाती है।

15. *डिप्लेजियम एस्कुलेन्टम* (वुडसिएसी): लिंगड़ा/लिंगुर। कुण्डलित और तरूण प्रपर्ण से सब्जी बनाई जाती है। विरेचक गुण होने के कारण वृहदांत्रशोथ (कोलाइटिस) तथा कब्ज के ईलाज में उपयोग किया जाता है। प्रकन्द का रस कटने एवं जलने पर लगाया जाता है।

16. *डिप्लेजियम मेक्सिमम* (वुडसिएसी): लिंगड़ा/लिंगुर/लुंगडु। कुण्डलित और तरूण प्रपर्ण से सब्जी एवं आचार बनाने और वृहदांत्रशोथ तथा कब्ज के ईलाज में उपयोग किया जाता है। डि. *एस्कुलेन्टम* एवं डि. *मेक्सिमम* दोनों जातियां स्थानीय बाजार एवं सड़क के किनारे 'लिंगड़ा' नाम से बेची जाती है।

17. *ड्रायोप्टेरिस क्राइसोकॉमा* (ड्रायोप्टेरिडेसी): प्रपर्ण की लेई का उपयोग आंत्र कृमिनाशक के रूप में किया जाता है।

18. *ड्रायोप्टेरिस कॉक्लिएटा* (ड्रायोप्टेरिडेसी): प्रकन्द का सत उल्टी एवं डायरिया के इलाज में काम में लिया जाता है।

19. *ड्रायोप्टेरिस जक्स्टापोजिटा* (ड्रायोप्टेरिडेसी): प्रपर्ण की लेई को टूटी हुई हड्डी को ठीक करने में लगाया जाता है।

20. *ड्रायोप्टेरिस वालिचियाना* (ड्रायोप्टेरिडेसी): कब्ज ठीक करने के लिए प्रकन्द को चूसा जाता है। प्रकन्द एवं पर्णवृन्त मे उदर कृमि नाशक तथा विरेचक गुण पाए जाते है।

21. *इक्विसीटम आर्वेन्स* (इक्विसीटेसी): घोड़ानली, हरजोड़। इससे बने काढ़े का उपयोग रक्तमेह (हिमेट्यूरिया) के उपचार में किया जाता है।

22. *इक्विसीटम रेमोसिसिमम* (इक्विसीटेसी): पादप की लेई को लाल मिट्टी के साथ मिलाकर अस्थि भंग के इलाज में प्रयुक्त किया जाता है।

23. *ग्लेफाइरोटेरिडोप्सिस इरूबिसेंस* (थेलीप्टेरीडेसी): प्रकन्द के पाउडर को ल्यूकोरिया एवं सूजाक के इलाज मे उपयोग मे लाया जाता है। पर्णवृन्त मछली पकडने के काम आता है जबकि सूखी हुई प्रपर्णों को छप्पर बनाने मे काम में लिया जाता है।

24. *हेल्मिन्थोस्टेकिस जेलानिका* (ऑफियोग्लोसेसी): कामसाज, इकडंडी। पादप को कामोत्तेजक माना जाता है तथा सायटिका के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है।

25. *हायपोडिमेशियम क्रिनेटम* (ड्रायोप्टेरिडेसी): तरूण पादप एवं फूले हुए पर्णवृन्त से हरी सब्जी बनाई जाती है। तरूण प्रपर्ण मवेशियों के चारे के लिए तथा सूखी हुई प्रपर्ण मवेशियों के छप्पर मे नीचे बिछाने के काम में ली जाती है।

26. *लोक्सोग्रामा इन्वोल्युटा* (पोलिपोडिएसी): शोभाकारी पादप के रूप में गमलों में लगाया जाता है।

27. *लायगोडियम फ्लेक्सुओसम* (लायगोडिएसी): प्रकन्द का चूर्ण और गौमूत्र की लेई को चर्म विकार मे लगाया जाता है। ताजा प्रकन्द को सरसों के तेल में उबालकर उसे गठिया मे प्रयुक्त किया जाता है। पादप की रस्सी बनाकर घास के बण्डल बांधने के काम आती है।

28. *लायगोडियम जपोनिकम* (लायगोडिएसी): प्रकन्द का चूर्ण और गौमूत्र की लेई पूतिरोधी एवं प्रतिजीवाण्विक के रूप मे काम मे ली जाती है।

29. *माइक्रोसोरम मेम्ब्रेनेशियम* (पोलिपोडीएसी): छोटे बच्चों मे छाती के दर्द, खांसी और ठंड से राहत के लिए इसके प्रकन्द एवं हल्दी को समान मात्रा मे पीसकर दूध में घोलकर छाती पर लगाया जाता है। प्रकन्द के काढ़े को पेचिश एवं अतिसार मे काम में लिया जाता है।

30. *नेफ्रोलेपिस कोर्डिफोलिया* (लोमारियोप्सिडेसी): रामशूल (कन्द)। कन्द की लेई दिमागी बुखार व सिर दर्द को कम करने के लिए लगाई जाती है। गर्मी की ऋतु मे गडरिये एवं ग्वाले प्यास बुझाने के लिए कन्द को खाते है। इसे शोभाकारी पादप के रूप मे गमलों में भी लगाया जाता है।

31. *ओडोंटोशोरिया चाइनेन्सिस* (लिंडसेसी): प्रपर्ण की लेई सूजन एवं मोच पर लगाई जाती है। सूखी हुई प्रपर्ण को चाय पत्ती के रूप मे चिरकालिक आंत्रशोथ को ठीक करने के लिए भी काम मे लिया जाता है।

32. *ओनाइकियम क्रिप्टोग्रामोइडिस* (टेरिडेसी): प्रपर्ण मवेशियों के चारे के लिए उपयोग मे ली जाती है।

33. *ओनाइकियम सिलिक्यूलोसम* (टेरिडेसी): प्रपर्ण एवं प्रकन्द का काढ़ा पेचिश के इलाज मे प्रयुक्त किया जाता है।

34. *ओसमुण्डा जैपोनिका* (ओसमुण्डेसी): तरूण प्रपर्ण मवेशियों के चारे के लिए तथा सूखी हुई प्रपर्ण मवेशियों के छप्पर मे नीचे बिछाने के काम मे ली जाती है।

35. *पोलिपोडिओडिस माइक्रोराइजोमा* (पोलिपोडिएसी): जोड़ो के दर्द एवं गठिया मे सूखी हुई प्रपर्ण एवं प्रकन्द का थोडा सा पाउडर दूध मे मिलाकर लेने से राहत मिलती है। खांसी से राहत के लिए प्रकन्द को भूनकर चूसा जाता है।

36. *पोलिस्टिकम नेपालेंस* (ड्रायोप्टेरिडेसी): प्रकन्द का काढ़ा पाचन सम्बन्धी विकार दूर करने मे तथा प्रपर्ण खाद बनाने के काम मे ली जाती है।

37. *पोलिस्टिकम स्क्वारोसम* (ड्रायोप्टेरिडेसी): प्रकन्द का काढ़ा उदर सम्बन्धी विकार दूर करने मे तथा प्रपर्ण को शादी या अन्य समारोह के दौरान घर अथवा मंच सज्जा के काम मे लिया जाता है।

38. *टेरिडियम रिवोल्यूटम* (डेंसटेडिएसी): पादप को मवेशियों के छप्पर को ढ़कने एवं निचे बिछाने तथा खाद बनाने के काम मे लिया जाता है।

39. *टेरिस बायॉरिटा* (टेरिडेसी): प्रपर्ण एवं प्रकन्द का काढ़ा चिरकालिक विकार के इलाज में प्रयुक्त किया जाता है।

40. *टेरिस विटाटा* (टेरिडेसी): दोल्या। कुमाऊँ की राजी जनजाति इसे मवेशियों के छप्पर में नीचे बिछाने के काम में लेती है।

41. *सिलेजिनेला ब्रायोप्टेरिस* (सिलेजिनेलेसी): मृत संजीवनी। इसे मूर्च्छा में काफी उपयोगी माना जाता है तथा पीलिया, अपच, वृहदांत्रशोथ तथा कब्ज के इलाज में प्रयुक्त किया जाता है। घरों में सजाने के लिए सूखे हुए पादप के गुच्छे गांवो/कस्बों के मेलों में बेचे जाते हैं, क्योंकि सूखे हुए पादप को पानी से भरी बोतल या पात्र में रखने पर वह पुनः हरा हो जाता है।

42. *टेक्टारिया कॉडुनाटा* (टेक्टारिएसी): प्रकन्द को ज्वर नाशी दवाओं के निर्माण के काम में लिया जाता है तथा बच्चों को पेट दर्द होने पर प्रकन्द का रस दिया जाता है।

43. *वुडवार्डिया यूनिजेमाटा* (ब्लेकनेसी): प्रपर्ण का काढ़ा पेचिश के उपचार मे प्रयुक्त होता है तथा प्रौढ़ प्रपर्ण को मवेशियों के छप्पर बनाने के काम मे लिया जाता है।

इस लेख में चम्पावत जिले के स्थानीय निवासियों द्वारा खाद्य सामग्री, औषधीयों, जैविक खाद, धार्मिक क्रियाकलाप, मान्यताओं साज-सज्जा, मवेशियों के लिए चारा, छप्पर बनाने आदि के लिए क्षेत्र में पाए जाने वाले पर्णोद्भिद के पारंपरिक उपयोगों पर प्रकाश डाला गया है। आयुर्वेदिक औषधियों के उपयोग का कोई दुष्प्रभाव नहीं है और ये आसानी से एवं कम कीमत में उपलब्ध हो जाती हैं। स्थानीय वनस्पतियों के सतत उपयोग से स्थानीय निवासियों की आमदनी बढ़ाई जा सकती है। इनसे स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर, आजीविका वृद्धि और सतत विकास संभव है। अतः समय की जरूरत को देखते हुए पीढ़ी दर पीढ़ी उपचार सम्बन्धी मौखिक रूप से संचारित होने वाले स्वदेशी ज्ञान का प्रलेखन किया गया है। यदि इस तरह का ज्ञान समय रहते प्रलेखित नहीं किया गया तो हमारे पूर्वजों के साथ, बिना किसी पुनःप्राप्ति के साधनों के समाप्त हो जाएगा। ये आंकड़े पादप रसायनज्ञों और औषधि विज्ञानियों के लिए नई दवाओं के विकास में उपयोगी हो सकते हैं।

आईपोमिया कार्निया: बेशरम नाम लेकिन अनेक काम

हरीश सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

भारत के मैदानी क्षेत्रों में उत्तर से दक्षिण तथा पूरब से पश्चिम तक पानी के नालों व आसपास की नम भूमि मे तेजी से उगने वाला एक विदेशी झाड़ी नुमा पौधा (5 से10 फीट ऊँचा), को उत्तर भारत तथा महाराष्ट्र में 'बेशरम' व 'बेहया' तथा ओड़ीशा में 'अमरी' व 'अमेरिका' के नाम से जाना जाता है। इसके इन नामों से स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि यह पौधा बहुत ही हटीला, आक्रामक तथा कभी न मरने वाला पौधा है। इस पौधे का वानस्पतिक नाम *आईपोमिया कार्निया* तथा कुल *कॉनवोलवुलेसी* है। इसे अंग्रेज़ी में 'पिंक मोर्निंग ग्लोरी' भी कहा जाता है। दरअसल, यह पौधा एशिया, अफ्रीका तथा उत्तर अमेरिका में अपने मूल निवास उष्णकटिबंधीय अमेरिका से जंगली घास के रूप मे विस्थापित हो कर आया हुआ है। इसके पौधे बड़ी तेजी से फैलने तथा उपयोग के प्रति लोगों का अनभिज्ञता के कारण लोग इसे अपने क्षेत्रों से कई वर्षों से हटाने का अथक प्रयास कर रहे हैं तथा संबंधित वैज्ञानिकों द्वारा इसका संस्तुत उपचार अधिक महंगा होने के कारण से भी इसका उन्मूलन सम्भव नही हो पाया है।

लेखक द्वारा ओड़िशा तथा उत्तर प्रदेश के विभिन्न आदिवासीय क्षेत्रों के लोक वानस्पतिक अध्ययन के दौरान इस पौधे के कुछ अज्ञात मुख्य उपयोगों को निम्ननिखित संकलित किया गया:

ओड़िशा के बालंगीर जनपद के रेंगाली व डुमरपदा गाँव में इसके हरे लम्बे तनों को एकत्र कर आपस में बुनकर मछली पकड़ने का संयंत्र बनाया जाता है, जिसे स्थानीय भाषा में 'पनियाला', 'पेनाला' या 'पैनाला' कहा जाता है। इसे बरसात के दिनों में तेजी से बह रहे पानी के धार के सामने लगा देने से इसमें मछलियां फँस जाती है जिन्हें एकत्र कर खाने व बेचने हेतु प्रयोग किया जाता है।

इसी राज्य के अंगुल जिले के करजेंगा तथा पल्लाहारा क्षेत्र में इसके छोटे, हरे व पतली टहनियों को आसानी से अति शीघ्र जड़ अंकुरित होने के कारण बगीचों और खेतों के चारों ओर की सीमा पर बाड़ लगाने के लिए रोपकर उगा दिया जाता है जिससे खेतों में उग रही फसलों की जानवरों से सुरक्षा की जा सके। इसके लेटेक्स को त्वचा रोग जैसे एक्जिमा तथा अंगुलियों के बीच में होने वाले फफूँद जनित रोग के उपचार हेतु लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ गाय व बकरियों को जहरीली होने के कारण खिलाई नही जाती है, किंतु इसके बीजों को कौवे द्वारा खाते देखा गया है।

मयूरभंज जिले के सुंडिवीला, हाथीकोट तथा कोसीगोड़ा क्षेत्र में इसकी ताजी पत्तियों को एकत्र कर धान के लिये तैयार किये जा रहे खेतों में सड़ाने हेतु फैला दिया जाता है तथा कुछ दिनों के बाद इन खेतों मे हल चलाकर इन्हें जैव-उर्वरक (बायो-फर्टिलाइजर) तथा जैव-कीटनाशक (बायो-पेस्टीसाईड्स) के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके तनों की छाल को भी पत्तियों के अनुपलब्धता में इसी उपयोग के लिए प्रयोग किया जाता है। इस पौधे को जहरीला मानते हुए इसकी पत्तियों को घरेलू जानवरों को नहीं खिलाया जाता है। इसके पतले तनों को आपस में बुन कर मुर्गियों के रहने के लिए छोटे-छोटे हवादार घर बनाते हैं। इसके लेटेक्स को ताजे कटे घाव पर लगाने से रक्त का प्रवाह शीघ्र बंद हो जाता है।

ओड़िशा के सुंदर गढ़ जनपद के लोडान व वेद व्यास क्षेत्र में महिलाएं इसकी सूखी लकड़ियों को एकत्र कर घर में चुल्हे पर खाना पकाने के लिए ईधन के रूप में प्रयुक्त करती हैं। इसकी पत्तियाँ अज्ञानता वश जानवरों के द्वारा खाने से वह पागल हो जाता है या आफरा रोग होने के कारण मर जाता है।

नुआपड़ा जिले के रजना, धरम बंधा क्षेत्र में इसके छोटी-छोटी हरी टहनियों को धान के फसलों के बीच-बीच में जैव- कीटनाशक के रूप में रोपा जाता है इससे उड़ने वाले हानि कारक कीट-पतंगे भी मर या भाग जाते हैं।

1. *आईपोमिया कार्निया* के नैसर्गिक उगते पौधे तथा फूल; 2. तनों से तैयार मुर्गियों के रहने के लिए घर; 3 - 4. तनों से मछली पकडने का संयंत्र (पनियाला / पेनाला/ पैनाला) बनाते हुए; **5.** ईधन हेतु सूखे तनों का एकत्रीकरण, 6-7. हरे एवं सूखे तनों से गन्ने के खेतों की बाड़ वंदी।

उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में बोक्सा तथा थारू जन-जातियों द्वारा इस पौधे के तनों से विभिन्न प्रकार की टोकरियाँ बनाई जाती हैं, जिन्हें गोबर, कूड़ा तथा मिट्टी-गारे आदि उठाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके तनों को एकत्र कर झोपड़ियों के छत, खेत के चारों ओर घेराबंदी हेन्य बाड़ तथा झाड़ू आदि भी बनाये जाते हैं।

इस प्रकार से इस बड़ी तेजी से फैलने वाले अनुपयोगी झाड़ के इस प्रकार के अत्यंत महत्व पूर्ण उपयोगों को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस पौधे को अब उजाड़ने की जरूरत नहीं बल्कि इसे अपने दैनिक जीवन में उपयोगी एवं घरेलू सामग्री बनाने के अतिरिक्त क्षेत्र के लोगों की आय का नया स्रोत बनाया जा सकता है।

बिहार के पश्चिम चम्पारण जिले की जनजातियों द्वारा खाई जाने वाली कुछ जंगली वनस्पतियाँ

हरीश सिंह*, मोनिका मिश्रा एवं पंकज ढोले
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा
***भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून**

भारत के बिहार राज्य में पश्चिम चंपारण जनपद 26 º 16' 27" और 27º 31' 83" उत्तरी अक्षांश और 83º 50' और 85 º 18' पूर्वी देशांतर के मध्य, जिसका मुख्यालय बेतिया में स्थित है। सन 2011 की जनगणना के अनुसार इस जिले का कुल क्षेत्रफल 5,228 वर्ग किलोमीटर तथा आबादी 3,922,780 है। इस जिले का अंतर्गत 3 उप-मंडल, 18 ब्लॉक / मंडल और 1483 गांव हैं। यह जिला नेपाल की तराई सीमा लगा हुआ है। वर्ष 1972 में राज्य में जिले के पुन: संगठन के परिणामस्वरूप इस जिले को पुराने चंपारण जिले से अलग किया गया था। इस जिले का नाम इस क्षेत्र में बहुतायत मे पाए जाने वाले बेंत (केलेमस) पौधे के कारण पड़ा । चंपारण नाम भी चंपक या चंपा (*मैग्नोलिया*) के पेड़ों के जंगल के कारण पड़ना प्रतीत होता है । पश्चिम चंपारण जिले की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है। क्षेत्र के किसान मुख्य रूप से धान और गन्ने की खेती करते हैं। इस जिले के लोकप्रिय कृषि आधारित उद्योगों में मझौलिया, बगहा, रामनगर, नरकटियागंज, चनपटिया और लौरिया में स्थापित चीनी मिलें हैं।

पश्चिम चंपारण जिलो को वाल्मीकि टाइगर रिजर्व (वी. टी. आर.) के लिए मुख्य रूप से जाना जाता है जिसे सन 1989 में इस जिले में सम्मिलित कर दिया गया था। इसका क्षेत्रफल 880 वर्ग किलोमीटर है। इसके अलावा इस जिले में वाल्मीकि वन्यजीव अभयारण्य और उदयपुर वन्यजीव अभयारण्य भी है। यहाँ के अन्य प्रमुख एतिहासिक स्थलो मे कुमार बाग और वृंदावन कुमार बाग है जहां से महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया था। इस जिले में अन्य प्रयटक स्थल जैसे वाल्मीकि नगर, त्रिवेणी बैंक, बवांगरही, भिक्नतोहारी, सरैया मैन, सुमेस्वर किला, बृंदावन, भितिहरवा आश्रम, नंदनगढ़, चंकीगढ़ और अशोक स्तंभ हैं।

पश्चिम चम्पारण जिले के वन्य क्षेत्र में पेड़ -पौधों की बहुत सी प्रजातियां पायी जाती हैं जिसे वहाँ के आदिवासी व स्थानीय लोग सदियों से औषधीय, खाद्य, तेल, पशु चिकित्सा, दातुन, भवन निर्माण, घरेलू कृषि उपकरण, कीट नाशक, चारा, ईधन एवं धार्मिक कार्य हेतु उपयोग करते आ रहे हैं। प्रस्तुत लेख में पश्चिम चम्पारण जिले के आदिवासियों द्वारा खाये जाने वाले 32 जंगली पादपों का वैज्ञानिक नाम, स्थानीय नाम, प्रकार एवं उपयोगों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है।

क्रम	वानस्पतिक नाम (कुल)	स्थानीय नाम	प्रकृति	उपयोग
1.	*अर्गेरिआ बेला* (कॉनवॉल्वुलेसी)	भाकनपोई	लता	इसकी पत्तियों को सब्जी के रूप में पका कर खाया जाता है और पत्तों को उबालकर बेसन में डुबाकर 'पकौड़ी' बनाकर खाई जाती है।
2.	*सीसलपीनिया कुकुल्लाटा* (लेग्यूमिनोसी)	हैइंसा	काष्ठ लता	इसकी पत्तियों को दाल में 'करी पत्ते' के रूप में उपयोग करते हैं।
3.	*केलेमस टेनुइस* (ऐरेकेसी)	बैंत	काष्ठ लता	इसके फल स्वाद में खट्टे होते हैं और खाए जाते हैं।
4.	*सरिस्कॉइड्स तर्जिदा* (रूबीएसी)	पिंडाल	छोटा वृक्ष	बाहरी त्वचा और बीजों को हटाने के बाद फलों को सब्जी के रूप में पका कर खाया जाता है।
5.	*कैलोकेशिआ एस्कुलेंटा* (ऐरेकेसी)	कछ, अरुवा	शाक	इसके भूमिगत तनों को सब्जी के रूप में पका कर खाया जाता है। अप्रैल - मई में इसकी नई कोमल पत्तियों को भी तेल तथा मसालों के साथ तलकर सब्जी की तरह खाया जाता है।

1. लालभितिया वन का एक दृश्य, 2. बशवा वन का एक दृश्य, 3. गनौली में मनोहर नदी का एक दृश्य, 4. कइला वन में ट्रांसेक्ट वॉक करते हुए अधिकारी गण, 5. भेडियरी वन में लोक-वानस्पतिक पौधों के नमूने संग्रह करते हुए, 6. नौरंगिआ दोन में स्थानीय वैद्य से वार्तालाप करते हुए

क्रम	वानस्पतिक नाम (कुल)	स्थानीय नाम	प्रकृति	उपयोग
6.	*क्रोटेलारिया एल्बीडा* (लेग्यूमिनोसी)	सैन	शाक	इसके बीजों को स्थानीय लोगों द्वारा खाया जाता है।
7.	*डेसमोडियम ओजेनेन्स* (लेग्यूमिनोसी)	पानन	वृक्ष	इसके फूलों को मई - जून में इकट्ठा किया जाता है और खाया जाता है।
8.	*फाइकस रेसीमोसा* (मोरेसी)	गुलर	वृक्ष	इसके फलों को तेल और मसालों के साथ सब्जी के रूप में पकाया जाता है। फलों को 'हलवा' के रूप में भी पका कर खाया जाता है।
9.	*फाइकस सेमीकोर्डेटा* (मोरेसी)	खुरहुर	वृक्ष	इसके फल मीठे होते हैं और स्थानीय लोगों द्वारा खाए जाते हैं।
10.	*फ्यूमरिया इंडिका* (पापावरेसी)	बेथुवा	शाक	इसकी पत्तियों को सब्जी के रूप में पका कर खाते हैं।
11.	*ग्रेविआ हिरसुटा* (मालवेसी)	बान मुसरी, बान भुजा, भुजानी	झाड़ी	इसके फल लाल रंग के होते हैं जिन्हें फरवरी - मार्च में पकने के बाद खाया जाता है।
12.	*ग्रेविआ सेपिडा* (मालवेसी)	फोर्सा	झाड़ी	इसके फल गहरे नीले रंग के होते हैं जिन्हें जून के महीने में खाया जाता है।
13.	*ग्रेविआ सेररुलाटा* (मालवेसी)	चिपलो, बाकेरकाई	छोटा वृक्ष	इसके फल काले रंग के और स्वाद में मीठे होते हैं जिन्हे स्थानीय लोगों द्वारा खाया जाता है।
14.	*ग्रेविआ टिलिफ़ोलिया* (मालवेसी)	भिनू फरसा	झाड़ी	बारिश के मौसम में काले-भूरे रंग के फल खाए जाते हैं।
15.	*इंडिगोफेरा केस्सिओइडिस* (लेग्यूमिनोसी)	बिरुली, बिरहुली, बिहुली, बनेली	झाड़ी	इसके गुलाबी फूल एकत्र किए जाते हैं और तेल और मसालों के साथ सब्जी तैयार की जाती है। सब्जी बनाने के लिए इन्हें आलू के साथ पकाया जाता है। इसे 'पकौड़ी' के रूप में भी पकाया जाता है। पकौड़ा और 'बड़ी' बनाने के लिए फूलों को अंडे के साथ तला जाता है।
16.	*ल्यूकास सिफेलोट्स* (लैमिएसी)	छोटा गुम्मा	शाक	इसकी नई कोमल पत्तियों को सब्जी के रूप में पकाया खाया जाता है।
17.	*ल्यूकास ज़ाइलेनिका* (लैमिएसी)	गुनीमा	शाक	इसकी नई कोमल पत्तियों को सब्जी के रूप में पकाया जाता है।
18.	*मैनिलकारा हेक्सैन्ड्रा* (सैपोटेसी)	खीर	वृक्	अप्रैल के महीने में इसके पीले फल खाए जाते हैं। इसके फलों का स्वाद मीठा, दूधिया और थोड़ा कसैला होता है।
19.	*मोरस इंडिका* (मोरेसी)	टूट	झाड़ी	इसके काले पके हुए फलों को स्थानीय लोगों द्वारा खाया जाता है।
20.	*पेचिराइजस एरोसस* (लेग्यूमिनोसी)	केशर	लता	इसके सफ़ेद कंद को उपवास के दौरान स्थानीय लोगों द्वारा खाया जाता है।

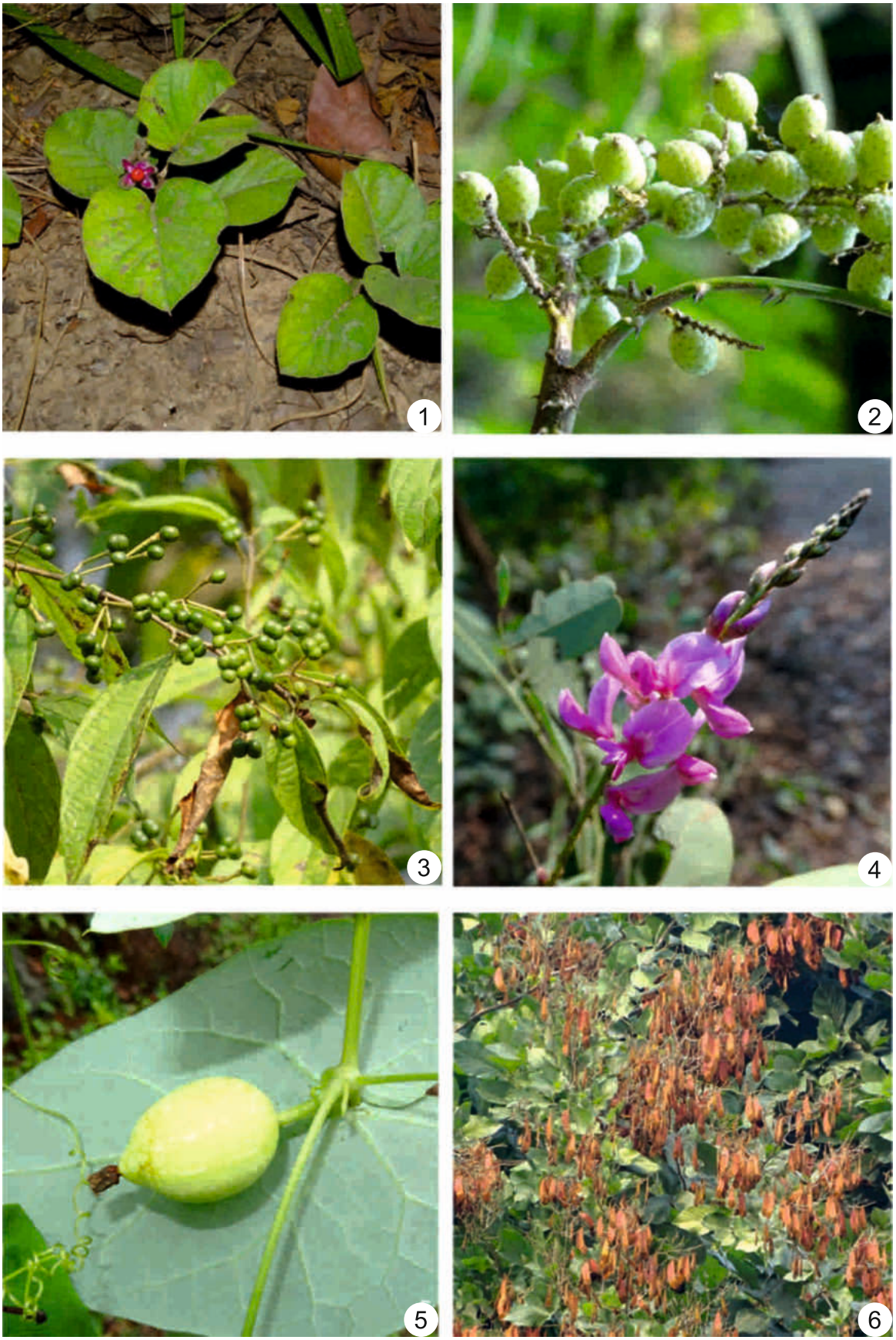

1. *अर्गेरिआ बेला*, 2. *केलेमस टेनुइस*, 3. *ग्रेविआ सेरुलाता*, 4. *इंडिगोफेरा केस्सिओइडिस*, 5. *सोलेना एम्प्लेक्सीकॉलिस*, 6. *स्पैथोलोबस पार्वीफ्लोरस*

क्रम	वानस्पतिक नाम (कुल)	स्थानीय नाम	प्रकृति	उपयोग
21.	*फ्लोगैकेन्थस थिरसीफोर्मिस* (अकेंथेसी)	चुहा	झाड़ी	इसके फूलों का उपयोग स्थानीय आदिवासियों द्वारा चटनी बनाने के लिए किया जाता है।
22.	*फाइसेलिस मिनिमा* (सोलेनेसी)	बड़ा भटकुंआ	शाक	इसके फल खाए जाते हैं। तथा इन्हें बाजार में भी बेचा जाता है।
23.	*स्माइलेक्स ओवेलीफोलिआ* (इस्माइलेकेसी)	दीन लता, राम दतुवन, गबनाहा	काष्ठ लता	इसके कोमल तनों को तेल - मसलों के साथ तलकर सब्जी बनाई जाती है।
24.	*सोलेनम अमेरीकेनम* (सोलेनेसी)	उपरत्कवा मिर्च, खुरसानी, भट कुनवा	शाक	इसके फल काले रंग के होते हैं जिन्हे फरवरी महीने में पकने के बाद खाया जाता है। इसकी नई पत्तियों को सब्जी के रूप में पकाया जाता है। इसके फलों का उपयोग मसालों के रूप में किया जाता है।
25.	*सोलेना एम्प्लेक्सीकॉलिस* (कुकुरबिटेसी)	चार गोरखा	लता	इसके फलों को स्थानीय लोगों द्वारा कच्चा खाया जाता है।
26.	*स्पैथोलोबस पार्वीफ्लोरस* (लेग्यूमिनोसी)	चरनी, बनवाड़, महाय, महिन	काष्ठ लता	इसके बीजों को भूनकर खाया जाता है। बीजों का तेल खाना पकाने के लिए उपयोग किया जाता है।
27.	*सिम्पलोकोस रेसीमोसा* (सिम्प्लोकेसी)	बान मुसरी	छोटा वृक्ष	इसकी पत्तियां स्वाद में खट्टी होती है जिन्हे फ़रवरी - मार्च के महीने में चटनी बनाने के लिए उपयोग किया जाता है।
28.	*सिजाईज़ियम सैलिसिफ़ोलियम* (मिरटेसी)	काठ जामुनी	वृक्ष	इसके फल बरसात के मौसम में स्थानीय लोगों द्वारा खाए जाते हैं।
29.	*तमिलनाडिया यूलिजिनोसा* (रूबिएसी)	पिंडाल	वृक्ष	इसके हरे फलों को सब्जी के रूप में पका कर खाया जाता है।
30.	*यूवेरिआ हेमिल्टोनाइ* (एनोनेसी)	गोन्हा	काष्ठ लता	जून -जुलाई में इसके पके हुए फलों को स्थानीय लोगों द्वारा खाया जाता है।
31.	*जिजिफस नुमुलेरिआ* (रहेमनेसी)	छोटा बेर	झाड़ी	इसके पके हुए नारंगी रंग के फलों को स्थानीय लोगों द्वारा खाया जाता है।
32.	*जिजिफस ज़ाइलोपाइरस* (रहेमनेसी);	बान बेर, दामराई	झाड़ी	इसके पके हुए फलों को मार्च के महीने में स्थानीय लोगों द्वारा खाया जाता है।

अत: इस प्रकार से उपर्युक्त जंगली खाद्य पौधों के बारे में जो जानकारी इस जिले के आदिवासियों द्वारा दी गयी है, उनका वैज्ञानिक सत्यापन करने हेतु उनके उपयोगी भागों का रासायनिक विश्लेषण किया जाना अपेक्षित है और यदि परिणाम सकारात्मक होते हैं तो इन पौधों को इस जनपद मे उगाने के लिए उन आदिवासियों को प्रोत्साहित कर उनके के लिए आय का एक और विकल्प बनाया जा सकता है।

वान वन्यजीव अभयारण्य के जंगली खाद्य पौधे

प्रियंका इंगळे, *सुनीता भोंसले, माधुरी पवार एवं पी. लक्ष्मीनरसिम्हन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे
***वनस्पतिशास्त्र विभाग, बलभीमकला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय, बीड**

वान वन्यजीव अभयारण्य, अकोला जिले के अकोट वन्यजीव डिवीजन में स्थित है, जिसमें मेलाघाट टाइगर रिजर्व का 211 वर्ग किमी क्षेत्र शामिल हैं। यह अभयारण्य 21°09'00" से 21°19'00" पूर्वी देशान्तर और 76°44'16" से 76°59'00" उत्तरी अक्षांश के बीच स्थित है। वान वन्यजीव अभयारण्य के 211 वर्ग किमी क्षेत्र में से केवल 205.86 वर्ग किमी का क्षेत्र वास्तविक वन क्षेत्र है और 5.14 वर्ग किमी क्षेत्र खेती और सात पूर्व गांवों का 'गौतन' क्षेत्र है।

अभयारण्य क्षेत्र में मौजूद एकमात्र गांव 'तलई' है। 'राठी' और 'कोरकू' आदिवासी समुदाय वान वन्यजीव अभयारण्य क्षेत्र में रहने वाले प्रमुख आदिवासी समुदाय हैं। हालांकि 'कोरकू' समुदाय की तुलना में 'राठी' समुदाय की संख्या अधिक है। ये दोनों समुदाय मुख्य रूप से अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए वान वन्यजीव अभयारण्य पर निर्भर हैं। खाद्योपयोगी और आर्थिक रूप सें महत्वपूर्ण पौधों की जानकारी एवं संख्या इन्हीं समुदायों के लोगों सें और स्थानीय वन श्रमिकों से एकत्रित की गई है।

इस शोध पत्र में हमने वान वन्यजीव अभयारण्य क्षेत्र से 38 कुल और 59 प्रजातियों के जंगली खाद्य पौधों की जानकारी प्रस्तुत की हैं। यह स्थानीय आदिवासी समुदाय और स्थानीय वन श्रमिक इन पौधों का फलों, सब्जियों, आदि के रूप में उपयोग करते हैं, जिनमें से सबसे लोकप्रिय जंगली खाद्य 'महुआ' है।

क्रम	(कुल)	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
1.	**अकेन्थेसी**	*ब्लेफॅरीस इन्टेग्रीफोलीया*	कांटा माका	पत्तियां	पत्तियों को सब्जी के रूप में पकाया जाता है।
2.	**अमेरान्थेसी**	*अमेरान्थस स्पायनोसस*	कांटा चौलाई	पत्तियां, युवा पौधे	पत्ते और युवा पौधे सब्जी के रूप में पकाए जाते है। विशेष रूप से सूखे की अवधि के दौरान यह सब्जी खाते है।
3.	**अमेरान्थेसी**	*अमेरान्थस व्हिरीडीस*	जंगली चौलाई	पत्तियां	यह एक सब्जी के रूप में खाया जाता है। सूजन, फोड़े और और रक्तस्राव के इलाज के लिए पत्तियों का उपयोग ताजा या सूखे पाउडर के रूप में किया जाता है।
4.	**अमेरान्थेसी**	*डायजेरा म्युरीकॅटा*	चंचली	पत्तियां, बीज और फूल	पत्तियां और युवा शूट की सब्जी पकायी जाती है। मूत्र संबंधी विकारों के इलाज मे बीज एवं फूलों का उपयोग किया जाता है।
5.	**ऐनाकार्डीएसी**	*बचनानीया कोचीनचायनेंसीस*	चिरोंजी	फल, बीज	फल खांसी और अस्थमा के इलाज में किया जाता है। पके हुए फल का छिलका खाया जाता है। बीजों का उपयोग मिठाई में सूखे मेवों के रूप में किया जाता है।
6.	**ऐनाकार्डीएसी**	*सेमिकार्पस ऑनाकार्डीयम*	भिलावां	फल	फलो के लाल-नारंगी भाग को धुप में सूखाया जाता है और अर्ध-सूखा होने के बाद इसे खाया जाता है। भिलावां के फलों का उपयोग त्वचा रोग, एलर्जी, जोड़ों मे

क्रम	(कुल)	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
					सूजन, जहरीले काटने, कुष्ठ रोग, खाँसी, अस्थमा और अपच में होता है। दर्दनाक घावों पर भिलावां तेल प्रभावी रूप से दर्द को नियंत्रित करता है।
7.	**एपोसायनेसी**	*कैरीसा करन्डास*	करोंदा	फल	करोंदा के फलों का स्वाद खट्टा होता है। फलो को ताजा खाया जा सकता है या जेली और जाम के लिए इस्तेमाल किया जाता है। करोंदा फलों का उपयोग सब्जी, चटनी और अचार बनाने में किया जाता है।
8.	**एपोसायनेसी**	*सिरोपिजीया बल्बोसा*	खाडुला	कंद	कंद कच्चे या पकाकर खाए जाते हैं। कंद से काढ़ा बनाते है।
9.	**एपोसायनेसी**	*राइटिया टिन्क्टोरिया*	कपार	पत्तियां	पत्तियों को सब्जी के रूप में पकाया जाता है। पत्तिया त्वचा विकार जैसे सोरायसिस कवक संक्रमण की औषधि में उपयोगी है।
10.	**एरेकेसी**	*फिनिक्स सिल्वेस्टिस*	सेंधी	फल	लाल रंग में पका हुआ फल खाया जाता है। यह खांसी, बुखार, तंत्रिका दुर्बलता और गोनोरिया में भी फल का उपयोग करते है।
11.	**एस्टरेसी**	*सॉन्थिलियम सायनेरियम*	सहदेवी	पत्तियां,बीज	पत्तियों को सब्जी के रूप में पकाया जाता है। बीज नींबू के रस के साथ पेस्ट में बनाये जाते हैं और पेडीक्यूली को नष्ट करने के लिए इस्तेमाल करते हैं।
12.	**वेस्टरेसी**	*ग्लॉसोकॉर्डीया बॉसवेलिया*	पत्थर-सुवा	पत्तियां	एक सब्जी के रूप में पत्थर-सुवा का उपयोग होता हैं। इसका स्वाद कड़वा होता है।
13.	**ऑक्जेलिडेसी**	*ऑक्जेलिस कॉर्निक्युलाटा*	अम्रुल	पत्तियां	पत्तियां सलाद के रूप में खाते हैं या सब्जी के रूप में पकायी जाती हैं।
14.	**बेसेलेसी**	*बैसेला अल्बा*	पोई	पत्तियां	व्यापक रूप से पत्ती का सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। पत्तियों का सूप बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। पोई की पत्तियों में कैलोरी कम मात्रा में होती है, लेकिन प्रति कैलोरी प्रोटीन की मात्रा उच्च होती है।
15.	**बोरेजिनेसी**	*कार्डीया डायकोटोमा*	लसोड़ा	फल	कच्चे फलों का साग और आचार भी बनाया जाता है। पके हुए फल मीठे होते हैं तथा इसके अन्दर गोंद की तरह चिकना और मीठा रस होता है। फलों की सब्जी भी बनती है।

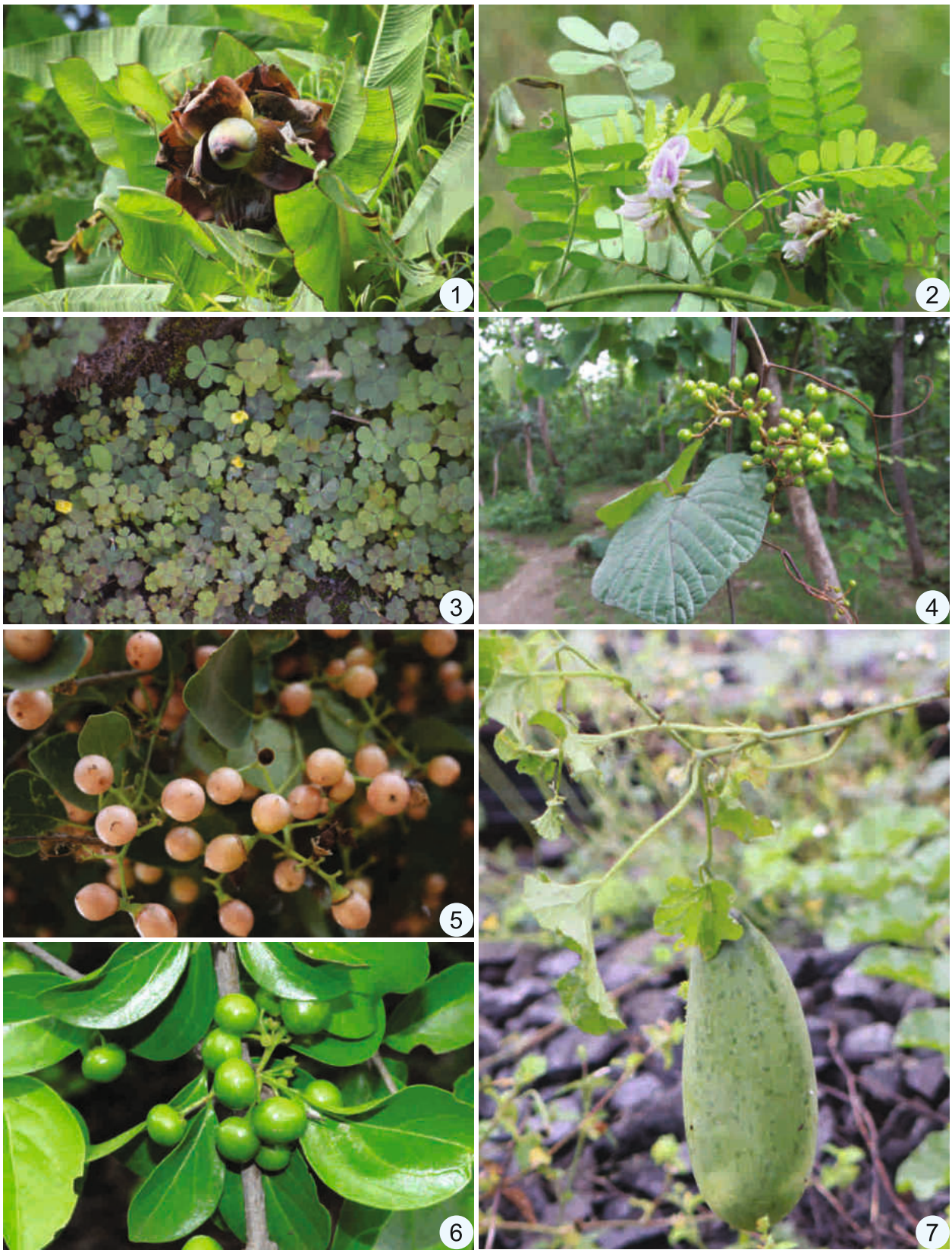

1. *इनसेटी सुपरबम;* 2. *एब्रस प्रिकेटोरियस;* 3. *ऑक्ज्यालिस कॉर्निक्युलाटा;* 4. *ऑम्फेलोसीसस लॅटीफोलाया;* 5. *कार्डीया डायकोटोमा;* 6. *कैन्थियम कोरोमन्डलीकम;* 7. *कुकुमिस मेलो*।

क्रम	(कुल)	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
16.	**बुरसेरेसी**	*बॉसवेलीया सिरॅटा*	शल्लकी	गोंद, फल	इस के फलों का अचार बनता है। इस से निकला गोंद को भारतीय फ्रैंकिनस कुंदर, मुकुन्द या लोबान कहते है यह जोड़ों के दर्द में बड़ी ही कारगर औषधि सिद्ध हुई है।
17.	**बुरसेरेसी**	*गरुगा पिन्नेटा*	खरपात	फल	फल कच्चे खाए जाते हैं, या फलों का अचार बनाते है।
18.	**सिजलपिनेसी**	*सेन्ना ऑरीक्युलॅटा*	पानवर	पत्तिया	पत्तियों को सब्जी के रूप में पकाया जाता है।
19.	**सिजलपिनेसी**	*सेन्ना टोरा*	पानवर	पत्तियां	युवा पत्तों को पकाया जाता है और उसे चावल के साथ खाते हैं। बीजों को सूखा के और भुन के पाउडर की मध्यम मात्रा में मुख्य भोजन के रूप में पकाया जाता है और खाया जाता है।
20.	**सिजलपिनेसी**	*टेमिरिन्डस इंडीका*	इमली	फल	खाद्य पदार्थो को खट्टा बनाने और चटनी बनाने आदि में इमली के फलों का उपयोग किया जाता है।
21.	**कैपेरेसी**	*कैपेरीस ग्रैंडिस*	पाचुंदा	फल	पाचुंदा के फल पोषक तत्वों में समृद्ध होते हैं। पाचुंदा के फलों का उपयोग एक सब्जी के रूप में किया जाता है। पाचुंदा के बीज अत्यधिक गर्मी के लिए प्रतिरोधी होते है।
22.	**कॉब्रिटेसी**	*टर्मिनेलीया बेलेरीका*	बहेड़ा	फल	बहेड़ा का बीज खाया जाता है। इसका रस मधुर, कषैला, गुण में हल्का, खुश्क, प्रकृति में गर्म, विपाक में मधुर, त्रिदोषनाशक, पोषक, रक्तस्तम्भक, दर्द को नष्ट करने वाला एवं आंखों के लिए गुणकारी है।
23.	**कोन्वोवुलेसी**	*रिव्हीआ हायपोक्रैटेरीफार्मिस*	सांजवेल	पत्तियां	पत्तियों का मसालों के साथ उपयोग किया जाता है और उसकी सब्जी बनाते है।
24.	**कुकुरबिटेसी**	*कॉक्सीनिया ग्रैन्डीस*	कुन्द्रू	फल	कच्चे फल सब्ज़ी बनाने के काम आते हैं और पकने पर ये ताजे भी खाए जाते हैं। पके हुए फलों को शक्कर में भिगो के खाते हैं।
25.	**कुकुरबिटेसी**	*कुकुमिस मेलो*	जंगली ककडी	फल	फल खाते है।
26.	**कुकुरबिटेसी**	*मेमोर्डीका डायोका*	बन करेला	फल	युवा हरे फलों को सब्जी के रूप में पकाया जाता है। बन करेले की जड़ पेस्ट शरीर पर बुखार में शामक के रूप में लगाते है।
27.	**डायोस्कोरीएसी**	*डायोस्कोरीया पेन्टॅफायला*	कांटा आलू	फूल	फूल सब्जी के रूप में खाते है।
28.	**इबनेसी**	*डायोस्पायरस मलबारीका*	गाब	फल	गाब के फल गोल होते हैं, और परिपक्व होने पर पीले होते हैं। पका हुआ फल चिकना है। इसका फल जब परिपक्व होता

1. *कैपॅरीस ग्रैंडिस;* 2. *कैरीया आर्बोरीया;* 3. *कैरीसा करन्डास;* 4. *गरुगा पिन्नेटा;* 5. *ग्लॉसोकॉर्डीया बॉसवेलिया;* 6. *जिझीपस रूगोसा;* 7. *जिझीपस झायलोपायरस*।

क्रम (कुल)	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
				है तब खाया जाता है। गाब के पत्तियां और फलों का प्रयोग प्राकृतिक रंग के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
29. **फैबेसी**	*एब्रस प्रिकेटोरियस*	गुंची	पत्तियां	गुंची पत्तियां मीठी होती हैं। पत्तियां पान के साथ चबायी जाती हैं या कच्ची खाते हैं।
30. **फैबेसी**	*म्युक्युना प्रयैंस*	किवांच	पत्तियां, बीज	पत्तियां और बीज सब्जी के रूप में खाते है।
31. **लैमिएसी**	*क्लेरोडेन्डम इनफॉरटुनॅटम*	भांट	पत्तियां	पत्तियों का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है। पत्तियों का रस मौखिक रूप से बुखार में दिया जाता है। पत्तियों का उपयोग काढा में होता हैं।
32. **लैमिएसी**	*रोथेका सिरॅटा*	भरंगी	पत्तियां	चावल के साथ युवा पत्ते और फूल की सब्जी बना के खाया जाता है।
33. **लेसिथिडेसी**	*कैरीया आर्बोरीया*	कुम्भी	फूल,फल	फलों का उपयोग अचार में होता है। पके फल खाते हैं। फूल सब्जी के रूप में पकाये जाते हैं।
34. **मालवेसी**	*फिरमिआना सिम्पेक्स*	कुलु	गोंद, बीज	पेड़ों से निकले गोंद का खाद्य पदार्थों में इस्तेमाल होता है। बीज भून के खाए जाते हैं।
35. **मालवेसी**	*ग्रेविया टिलीफोलीया*	धमनी	फल	यह फल सूक्ष्म पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है जैसे एन्थॉकायनिन, फिनोल, फ्लेवोनोइड और विटामिन सी। फल खाते और यह फल विटामिन 'सी' का एक अच्छा स्रोत है।
36. **मायमोसासी**	*पिथेसेलोबिअम डुल्से*	जंगल जलेबी	फल	इसका फल सफ़ेद और पूर्णतः पक जाने पर लाल हो जाता है खाने में मीठा होता है। फली में एक मिठा मांस होता है जो कि बीज के चारों ओर से होता है, इस मांस को कच्चा या उबाल कर खाया जाता है।
37. **मोरेसी**	*फायकस रेसीमोसा*	गूलर	फल	पके फल खाते हैं। गूलर का पका फल मधुर, कृमिकारक, जड़, रूचिकारक, अत्यंत शीतल, कफकारक, तथा रक्तदोष, पित्त, दाह नाशक है।
38. **मुसेसी**	*इनसेटी सुपरबम*	जंगली केला	फूल	फूल सब्जी के रूप में पकाया जाता है।
39. **म्रिर्टेसी**	*सिजाईजियम क्युमिनी*	जामुन	फल	जामुन का फल खाते हैं। इस फल के बीज में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और कैल्शियम की मात्रा अधिकता होती

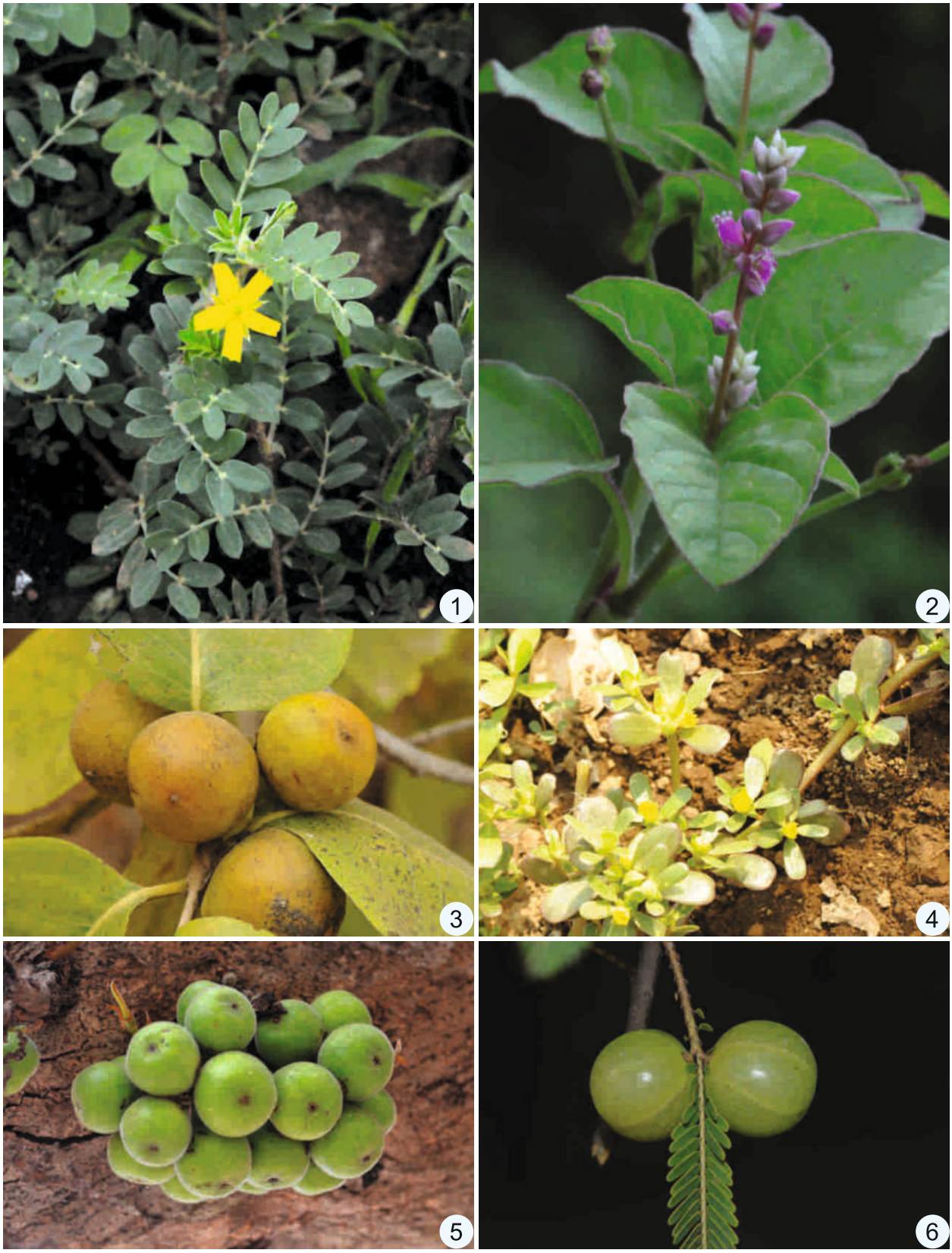

1. *टायबुल्स टेरेस्टीस;* 2. *डायजेरा म्युरीकैटा;* 3. *डायोस्पायरस मलबारीका;* 4. *पोर्टुलॅका ऑलिरैसिया;* 5. *फायकस रेसीमोसा;* 6. *फायलॅन्थस इब्लीका*।

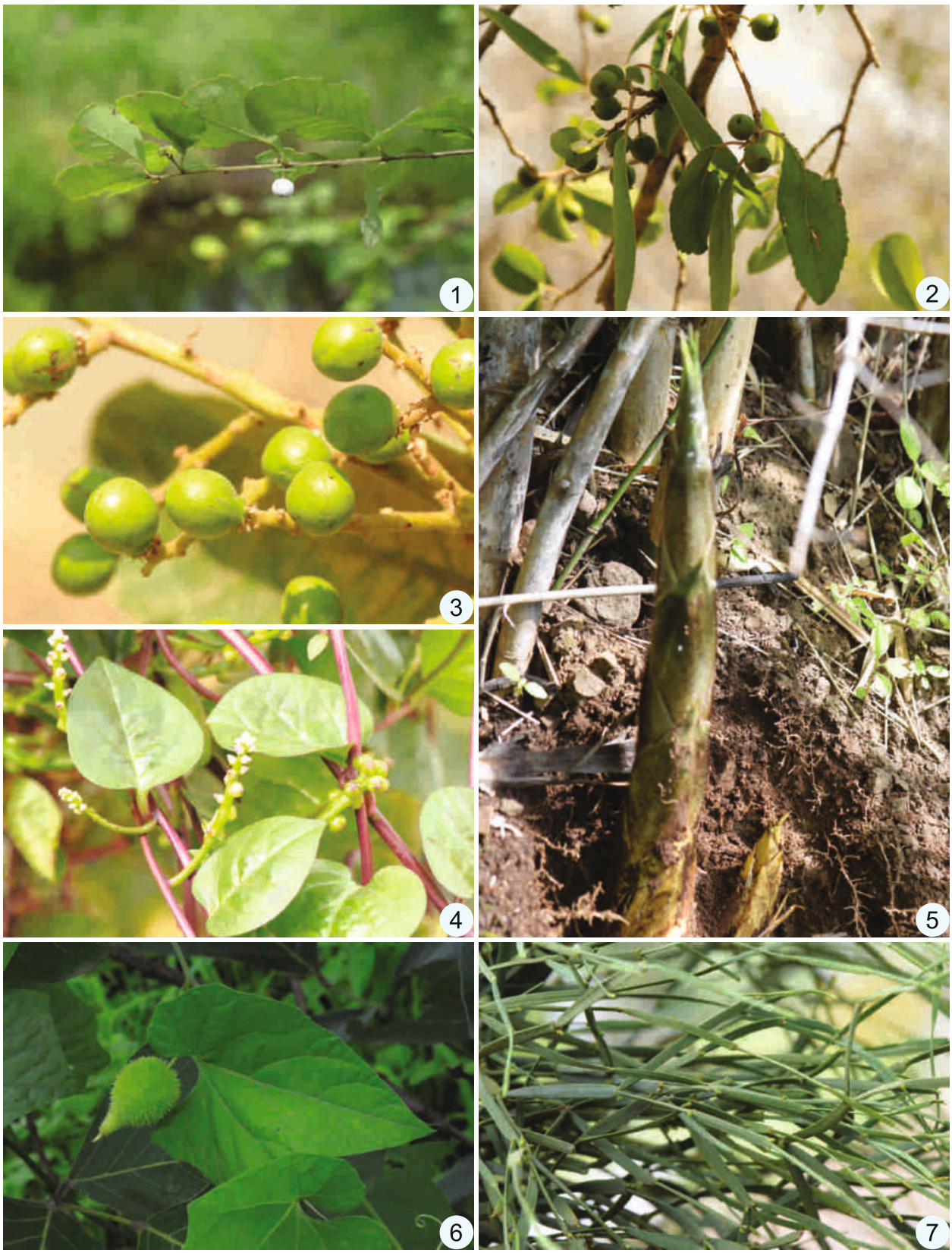

1. *फ्लुजिया व्हायरोसा;* 2. *फ्लैकॉर्शिया इंडीका;* 3. *बचनानीया कोचीनचायनेंसीस;* 4. *बैसेला अल्बा;* 5. *बैम्बुसा बैम्बस;* 6. *मेमोर्डीका डायोका;* 7. *व्हिसकम आर्टिक्युलॉटम*।

क्रम (कुल)	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
				है। यह लोह का बड़ा स्रोत है।
40. **फायलॅन्थेसी**	*ब्रिडेलिया रेटुसा*	काझी	फल	फल खाते है।
41. **फायलॅन्थेसी**	*फ्लुजिया व्हायरोसा*	डालमे	फल	फल मिठे होते है।फल परिपक्व होने पर लोगों, जानवरों और पक्षियों द्वारा खाया जाता है।
42. **फायलॅन्थेसी**	*फायलैन्थस इब्लीका*	आँवला	फल	आँवला के फल खाते है। आँवला विटामिन 'सी' का सर्वोत्तम और प्राकृतिक स्रोत है। आँवला दाह, रक्तपित्त, अरुचि, त्रिदोष, दमा, खाँसी, श्वास रोग, कब्ज, क्षय, छाती के रोग, हृदय रोग, मूत्र विकार आदि अनेक रोगों को नष्ट करने की क्षमता रखता है।
43. **पोएसी**	*बैबुसा बैम्बस*	बांस	युवा शूट	युवा शूट को पकाया जाता है।
44. **पोर्टुलॅकेसी**	*पोर्टुलॅका ओलेरॅसिया*	लूनिया	पत्तियां	पत्तियों को ताजा या पकाके खाया जाता है। पत्तियों सें सूप बनाते है।
45. **पोर्टुलॅकेसी**	*पोर्टुलॅका क्वाडीपिडा*	रानघोल	पत्तियां	पत्तियों और युवा शूटिंग को कच्चा खाते हैं। पत्तियों को एक सब्जि के रूप में भी खाते हैं।
46. **रैम्नैसी**	*जिझीपस जुजुबा*	बेर	फल	फल खाते हैं।
47. **रैम्नैसी**	*जिझीपस ओइनोपोलीया*	माकइ	फल	फल खाते हैं।
48. **रैम्नैसी**	*जिझीपस रूगोसा*	चुर्ना	फल	फल खाते हैं।
49. **रैम्नैसी**	*जिझीपस झायलोपायरस*	घाटबेर	फल	फल खाते हैं।
50. **रूबिएसी**	*कॅन्थियम कोरोमन्डलीकम*	किरमा	फल	फल खाते है।
51. **रूटेसी**	*अगेल मारमेलॉस*	बेल	फल	फलों को कच्चा खाया जाता है या मुरब्बा, जाम, जेली, पेय आदि में उपयोग करते है।
52. **रूटेसी**	*फेरोनिया लिमोनिया*	कैठ	फल	फलों का शरबत और चटनी बनाने के लिए उपयोग किया जाता है।
53. **सॅलीकेसी**	*फ्लैकॉर्शिया इंडीका*	बिलाङ्गड़ा	फल	फलों को कच्चा खाया जाता है या जेली या जाम बनाया जाता है।
54. **सॅन्टॅलेसी**	*व्हिसकम आर्टिक्युलॅटम*	बुदू	सम्पूर्ण पौधा	पौधे का खाने में उपयोग किया जाता है।
55. **सॅपोटेसी**	*मधुका लॉन्गीफोलीया*	महुआ	फूल, फल, बीज	कच्चे फलों की सब्जी बनती है। इसके फूलों का उपयोग शराब के उत्पादन के लिए भी किया जाता है। महुए की शराब को संस्कृत में 'माध्वी' और गँवरा में 'ठर्रा' कहते हैं। सूखे महुए को

1. *रिव्हीआ हायपोक्रॅटेरीफार्मिस;* 2. *सेमिकार्पस ऑनाकार्डीयम;* 3. *होलोप्टेलिया इन्टीग्रीफोलिया*।

क्रम	(कुल)	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
					भूनकर उसमें मूंगफली के दाने मिलाकर आदिवासी लोग खातें हैं। महुए के फूल में चीनी का प्रायः आधा अंश होता है, इसी को पशु, पक्षी और मनुष्य सब चाव से खाते हैं। इसके फूल, फल, बीज, लकड़ी सभी चीजें काम में आती है इसलिए कई आदिवासी समुदायों में इसकी उपयोगिता की वजह से इसे पवित्र माना जाता है।
56.	**उल्मेसी**	*होलोप्टेलिया इन्टीग्रीफोलिया*	चिलबिल	बीज	बीज का खाने मे उपयोग होता है।
57.	**वार्बिनेसी**	*लैन्टाना कमारा*	राईमुनिया	फल	पके फल खाते हैं।
58.	**व्हायटेसी**	*ऑम्फेलोसीसस लॅटीफोलाया*	कट्टी बेल	पत्तियां, फल	पत्तियां और पके फल खाते है।
59.	**जायगोफायलेसी**	*टायबुल्स टेरेस्टीस*	गोखरू	पत्तियां, फल	युवा पत्ते और फल सब्जी के रूप में पकाये जाते हैं।

वनस्पति वाणी अंक 28: 60 (2019)
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

कीटभक्षी यूट्रीकुलेरिया वंश और उसका कीट जालतंत्र

अनन्त कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

हमारे ब्रह्मांड में पृथ्वी एक मात्र ऐसा ग्रह है। जहां जीवन की उत्पत्ति का मुख्य कारण, यहां पर उपस्थित पर्यावरण है, जो पेड़ - पौधों की देन है। हमारी पृथ्वी पर लगभग 2,50,000 से अधिक जातियों के पुष्पीय पौधे पाये जाते हैं। पुष्पीय पौधे अन्य पौधों की अपेक्षा में अधिक विकसित और प्रमुख हैं। पुष्पीय पौधों ने अपने आपको प्रत्येक जीवन शैली के अनुरूप परिवर्तित कर लिया है। यह स्थल से लेकर जल तक, अधिजीवक, परजीवी और मृतोपजीवी से लेकर कीटभक्षी तक के रूप तक के रूप में पाये जाते हैं। इस लेख द्वारा लेखक जनसाधारण में कम प्रचलित / लोकप्रिय कीट भक्षी पौधों के वंश *युट्रिकुलेरिया* द्वारा कीटों को पकड़ने की प्रणाली पर जानकारी विस्तारण करना है। साधारणतः छात्र - छात्राओं द्वारा स्कूलों में जब भी कीटभक्षी पौधों पर प्रोजेक्ट दिया जाता है तो अक्सर *नेपेन्थेस* (पिचर प्लांट) *ड्रोसेरा*, *डिओनेया* (वीनस फलाई) (ट्रैप) इत्यादि जैसे बहुप्रचलित पौधों का विवरण मिलता है। किंतु *युट्रिकुलेरिया* वंश कम लोकप्रिय होने के कारण उपेक्षित रह जाता है। *युट्रिकुलेरिया* वंश के पौधें लेंटिबुलेरियेसी कुल के सदस्य हैं। संसार में *युट्रिकुलेरिया* की 220 से अधिक जातियां पाई जाती हैं जबकि भारत में मात्र 38 जातियों का विवरण पाया गया है। ये स्थलीय एवं जलीय, दोनों प्रकार के स्थानों पर पाये जाते हैं। डार्विन के समय से ही इन्हें आश्चर्जनक पौधों की श्रेणी में रखा गया है। ये अक्सर ऐसे स्थानों पर पाये जाते हैं जहां पोषक तत्वों की कमी होती है। इसलिए इन पौधों ने अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए परिवर्तन किए हैं जो इनकों विशेष स्थान पर लाकर खड़ा कर देते हैं। इनमें सबसे रोचक है इनका कीटों को पकड़ने का जालतंत्र। साधारण लोग सोचते हैं कि *युट्रिकुलेरिया* वंश के पौधों के पुष्पों में कंट (spur) होता है जो कीड़े मकौड़ो को पकड़ लेता है। इसीलिए इनकों कीटभक्षी पौधों की श्रेणी में रखा गया है, लेकिन यह सत्य नहीं है। *उट्रिकुलेरिया* वंश के पौधों की जड़ों के मध्य, मूत्राशय के आकार की अनेक छोटी -छोटी थैलियां होती है जो हवा से भरी होती है। इन मूत्राशय के आकार की थैलियों के कारण इनकों ब्लेडर वर्ट्स भी कहा जाता है। इन छोटी -छोटी थैलियों में एक मुख्य द्वार होता है जो संवेदी बालों से घिरा होता है। जब कोई कीट भोजन - पानी की तलाश करते - करते इन संवेदी बालों के संपर्क में आता है तो द्रुत गति से वह मुख्यद्वार खुल जाता है जिसके परिणामस्वरूप उन थैलियों में चुसाव (suction) पैदा होता है और उस चुसाव के कारण कीट उसमें प्रवेश कर जाता है। थैलियों के अंदर उपस्थित ग्रंथियों से रिसाव होता है जो कीटों का पाचन करने में अहम भूमिका निभाता है। इसी कारणवश *युट्रिकुलेरिया* वंश के पौधें पादपजगत में विषेश स्थान रखते है और आश्चर्यजनक पौधे कहलाए जाते हैं।

युट्रिकुलेरिया औरिया

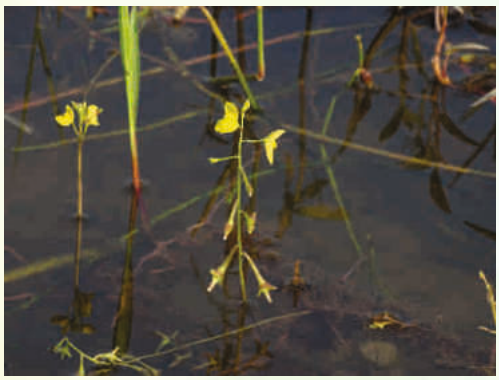

युट्रिकुलेरिया औरिया

युट्रिकुलेरिया स्ट्रीयाटुला

हिमालय का संकटग्रस्त औषधीय पौधा: सालम पंजा

भावना जोशी एवं गिरिराज सिंह पंवार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

सालम पंजा – *डैक्टायलोराइजा हटाजीरा*

सालम पंजा (*डैक्टायलोराइजा हटाजीरा*) आर्किडेसी कुल का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बहुवर्षीय पौधा है। इसकी जड़ की आकृति मानव के हाथ के पंजे की तरह होती हैं, जिस कारण स्थानीय लोग इसे हत्थाजड़ी या सालम पंजा के नाम से भी जानते है। हत्थाजड़ी को भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे कश्मीर में इसे सालम पंजा, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में हत्ताजड़ी, लेह-लद्दाख में बांगलैक अथवा अगुलग्पा तथा अंग्रेजी में हिमालयन मार्श आर्किड इत्याादि। इसके अलावा अरबी भाषा में सलाब, हिन्दी में सालम पंजा तथा संस्कृत भाषा में इसे सालम मिश्री, नेपाल और हिमालयी क्षेत्रों में पंचाले (पंचुले) इत्याादि नामों से जाना जाता है। यह पौधा विश्व के कई देशों के साथ-साथ भारत में भी पाया जाता है। इसे नेपाल और हिमालयी क्षेत्रों में पंचाले (पंचुले) भी कहा जाता है। पंचुले का अर्थ है पांच उंगलियों वाला हाथ। इसकी जड़ से 3-5 उंगलियों के समान उभार निकलते है, जो हाथ के पंजे की तरह प्रतीत होते हें। यह 2800-5000 मीटर की ऊंचाई पर पाए जाने वाले हिमालयन आर्किड की एक महत्वपूर्ण प्रजाति है। यह एक बारहमासी जड़ी-बूटी है जो अपने औषधीय गुणों के लिए काफी प्रचलित है।

वितरण: विश्व में यह पौधा नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, चीन, तिब्बत, उत्तरी अफ्रीका, यूरोप तथा समशीतोष्ण जलवायु वाले अन्य एशियाई क्षेत्रों में भी पाया जाता है। भारत में यह हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश में 2500 से 5000 मीटर तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है।

जलवायु: यह पौधा मुख्यतया बर्फीले स्थानों, नदियों तथा जलस्त्रोतो के किनारों पर जहां भूमि में नम आर्द्रता की मात्रा काफी अधिक होती है ऐसे स्थानों पर इसका प्राकृतिक आवास होता है। इन स्थानों पर ठंडक की मात्रा सर्दियों में काफी कम होती है और कभी-कभी तापमान शून्य डिग्री से नीचे भी चला जाता है। ग्रीष्म कालीन तापमान मुख्यतः 15 से 18 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है।

इन स्थानों पर जब बर्फ का पिघलना शुरू होता है, तब इसके बीजों में अंकुरण भी प्रारम्भ होता है तथा पौधा अपनी वृद्धि करना प्रारंभ कर देता है, और अगली सर्दी के आगमन से पूर्व ही अक्टूबर माह तक यह अपना जीवन-चक्र पूर्ण कर लेता है। इस पौधे को अपने विकास के लिए गहरे धूसर रंग की दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है। पहाड़ी क्षेत्रों की मिट्टी में कंकड़-पत्थर पाए जाते हैं, जो मृदा के वायु संचरण में अहम भूमिका निभाते हैं।

संक्रिय संघटक: इसकी जड़ों में एक क्रियाशील तत्व डेक्टायलेरिन ए-ई तथा एक कड़वा ऐल्केयलोइड ग्लूकोसाइड लोरोग्लेसिन भी पाया जाता है। इसके अलावा इसमें डेक्टायलोसेस ए, बी, लिपिडस, स्टार्च फास्फेट, म्यूसिलेज तथा एक वाष्पशील तेल भी पाया जाता है। इस पौधे से निकले हुए रस पर कई प्रकार के परीक्षण किए गए हैं और सभी परीक्षणों के परिणाम से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस पौधे में सभी ग्राम धनात्मक और ऋणात्मक बैक्टेरिया के विरूद्ध एक मजबूत प्रतिरोधक क्षमता पायी जाती है। इसके अलावा इस पौधे से निकला हुआ रस

डैक्टायलोराइजा हटाजीरा का पादप हाथ के आकारनुमा जड़ एवं सूखे हुए कैप्सूल।

ई कोलाई नामक बैक्टिरिया जो कि शरीर में दस्त उत्पन्न करता है, के नियन्त्रण हेतु एंटी माइक्रोबियल औषधि के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। कई प्रकाशित शोधों के मतानुसार जब इस पौधे के रस को चूहों को दिया गया तो इन चूहों में टेस्टोस्टीरोन नामक हार्मोन का स्तर काफी बढ़ गया था। यह शोध दर्शाता है कि इस पौधे का रस लैंगिक क्षमता को बढ़ाने में भी काफी मददगार साबित होता है।

वानस्पतिक वर्णन: सालमपंजा एक बारहमासी औषधीय जड़ी-बूटी है जो कि तीव्र गति से धरती से लुप्त होती जा रही है। जिसका तना सीधा 60 से.मी. तक ऊँचा, पत्तीदार, मोटा और खोखला होता है। इसकी पत्तियां 3-6 से.मी. सीधी, आयताकार, जीभिकाकार या अण्डाकार तथा शीर्ष पर तीव्र होती हैं। इसके पुष्प गुलाबी तथा बैंगनी रंग के साथ ही एक स्पाइक में व्यवस्थित होते हैं। जिसमें एक घुमावदार स्पर भी पाया जाता है। इसके साथ ही इसमें तीन हुड भी पाए जाते हैं जिनमें से दो बाहर की ओर फैलते हैं। इसका पुष्पन काल जून से जुलाई माह तक होता है। इसकी जड़ें कंदमय होती हैं, जो कि दो या तीन पालियों में विभाजित होकर हाथ के पंजे सदृश आकृति बनाती है।

औषधीय उपयोग: इसके हाथ के पंजे के आकार की जड़ से निकाले गए रस को पायरिया (मसूड़ों और दांतों की सूजन) के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है। इसकी जड़ से बने पेस्ट को चोट एंव घाव वाले स्थानों पर लेप के रूप में भी लगाया जाता है साथ ही दस्त तथा लम्बे समय से बने हुए बुखार आदि को दूर करने में भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह आंतों के विकारों में भी काफी कारगर सिद्ध होता है।

यह अस्थियों के जोड़ने में भी काफी कारगर है इसलिए इसका हत्थाजड़ी नाम इस पर पूर्ण रूप से उपयुक्त बैठता है। इस पौधे का प्रकंद कामोत्तेजक, पोषक, तंत्रिका तंत्र को मजबूत करने में काफी कारगर है। यूनानी चिकित्सा प्रणाली के अनुसार इसका उपयोग अर्ध-दुर्बलता, पुरानी अतिसार, दुर्बलता, सामान्य कमजोरी, शीघ्र पतन, शुक्राणुओं की कमी तथा सेक्सुअल परेशानियों में भी उपयोग किया जाता है।

लकवाग्रस्त अवस्था में लकवे के प्रभाव को कम करने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। प्रसव के बाद महिलाएं इस पौधे के लेप को कटे एंव घाव वाले स्थानों पर आराम पाने हेतु सेवन करती हैं। इसके अलावा कुछ स्थानीय लोग इसे पेट दर्द, खांसी, त्वचा के जलने व कटने/फटने आदि समस्याओं के निवारण में भी इसका उपयोग करते है

प्रजनन: आर्किड कुल में परागण विशिष्टता और माइकोराईजल ऐसोसिएशन के साथ ही इनके बीजो का सूक्ष्म आकर इस कुल में आने वाली समस्त प्रजातियो के प्रजनन में एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में सामने आती है और इन्हीं सब कारणों से इस कुल के प्रजनन में भी काफी समस्या आती है। सालम पंजा भी आर्किड कुल का होने के कारण इस पौधे में भी प्रजनन काफी धीमी गति से होता है परन्तु इस पौधे के औषधीय एवं व्यापारिक महत्व के कारण स्थानीय लोग इस के औषधीय गुणों की खान का काफी तेजी से हनन कर रहे है, पर उतनी ही तेजी से इसका पुनरुत्पादन नहीं कर पा रहे है उपरीक्त समस्त कारणों से यह पौधा संरक्षण की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गया है।

प्राकृतिक अवस्था में इसके बीजों की अंकुरण क्षमता मात्र 20-30 प्रतिशत तक होती है, जिस कारण इसका उत्पादन केवल इसके कंद के विभाजन के माध्यम से ही सम्भव है। अक्टूबर माह के दौरान जब प्रकंद के समस्त वायवीय भाग सूखकर अलग हो जाते हैं और केवल प्रकंद ही जमीन में शेष रह जाता है, उस अवस्था में इसकी जड़ों को मिट्टी से निकालकर पूर्ण रूप से साफ करते हैं ताकि इसका मूल सफेद रंग प्रतीत होने लगे फिर इसको गर्म पानी में भिगोकर इसके छिलके को उतारकर, धूप में सुखाकर इसके पैकेट बना लिये जाते हैं। इसका बाजार में भाव 4000-5000 रूपये प्रति/किलोग्राम तक होता है। इन्हीं कारणों से जम्मू कश्मीर के श्रीनगर, उधमपुर, किश्तवाड़, हिमाचल प्रदेश के चंबा तथा कुल्लू, उत्तराखण्ड के रामनगर तथा टनकपुर आदि शहरों में इसकी खरीद फरोक्त की जाती है। भारत में इसका इत्पादन कम होने की स्थिति में इसे अन्य देशों जैसे कि नेपाल, अफगानिस्तान, ईरान, टर्की से भी आयात किया जाता है।

संरक्षण: भारत में इस पौधे का औद्योगिक तौर पर अधिक उत्पादन न होने के कारण परन्तु औषधीय जगत में लगातार इसकी अत्यधिक मांग होने के कारण अब इस पौधे को इनके प्राकृतिक आवास से भी प्राप्त करना काफी कठिन हो गया है। पुरानी पुस्तकों में जिन-जिन स्थानों पर इसकी उपलब्धता का वर्णन किया गया था, अब यह पौधा उन-उन स्थानों में दिखाई नहीं देता है। इसके साथ ही जिस मात्रा व संख्या में इसके विषय में बताया गया था, वह भी आज उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार जंगलों से इसके अत्यधिक दोहन के कारण आज यह पौधा संकटाग्रस्त पौधे की श्रेणी में आ चुका है। इसलिए स्थानीय लोग इसके स्थान पर दूसरी प्रजातियां जैसे *आर्किस मेस्कुला* तथा *आर्किस लेक्सिलोरा* की जड़ों को सालम पंजा के नाम से बाजार में बेच रहे है।

इसकी जड़ों की 1 किलोग्राम मात्रा एकत्रित करने के लिए लगभग 100 पौधों की जड़ों को उखाड़ा जाता है। प्रायः इसकी जड़े जमीन में 1-2 इंच अंदर ही पायी जाती हैं। जब स्थानीय लोग अपने पशुओं को चरागाह में चराने के लिये ले जाते हैं तो उस दौरान पशुओं के खुरों से दबकर ये जड़े आसानी से नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार इसके अत्याधिक दोहन किन्तु सीमित उत्पादन के फलस्वरूप आज यह प्रजाति संकटग्रस्त हो चुकी है तथा "कन्वेंशन ऑन इन्टरनेशनल ट्रेड इन एनडेंर्जड स्पीशीज ऑफ वाइल्ड फ्लोरा एंड फौना" (सीआईटीईएस) के परिशिष्ट-।। में इसे भी सम्मिलित किया जा चुका है। इस सीआईटीईएस का उद्देश्य इन जातियों का किसी भी रूप में व्यापार पर पूर्णतः प्रतिबंध लगाना है साथ ही यह विलुप्तप्राय प्रजातियों के संरक्षण में एक ठोस कदम है।

इसके साथ ही इस पौधे के संरक्षण हेतु कुछ स्थानीय लोगों ने "गुड कलेक्शन एवं कंजर्वेशन प्रैक्टिसेज" नामक संस्था बनायी है जिसके अनुसार अगर कोई भी व्यक्ति जंगल में से एक बार में सभी पौधों को ना उखाड़े, भविष्य के लिय कुछ पौधों को उनके प्राकृतिक आवास में छोड़ दें। यदि किसी स्थान पर एक या दो पौधे हैं तो उन्हें ना उखाड़े साथ ही अगर कन्द या राइजोम की आवश्यकता हैं तो समूचे पौधे को न छेड़े। इस प्रकार के कदम को अपना कर स्थानीय लोग इसके उत्पादन एवं आपूर्ति में सन्तुलन बनाने का अथक प्रयास कर रहे हैं और साथ ही इस प्रजाति को इसके प्राकृतिक आवास में संरक्षित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका भी निभा रहे हैं, ताकि इस दुर्लभ औषधीय पौधे "सालम पंजा" को इस संसार से विलुप्त होने से बचाया जा सके।

छोटा सितारा झाड़ी (*राइटिया एण्टीडायसेन्ट्रिका*) - एक परिचय

ओंकार नाथ मौर्य[1], कुमार अविनाश भारती[2] एवं आशुतोष कुमार वर्मा[3]
[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता, [2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा एवं
[3]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

वानस्पतिक नाम- *राइटिया एण्टीडायसेन्ट्रिका*

कुल - एपोसायनेसी

सामान्य नाम - एसियन स्नो, कोरल चक्कर,आकाश गंगा, सफेद परी, कुटजा

राईटिया प्रजाति को एक ब्रिटिश वनस्पतिज्ञ एवं चिकित्सक विलियम राइट के सम्मान में बनाया गया हैं एवं जाति नाम एन्टीडायसेन्ट्रिका इसके पेचिश में गुणकारी होने के कारण दिया गया है।

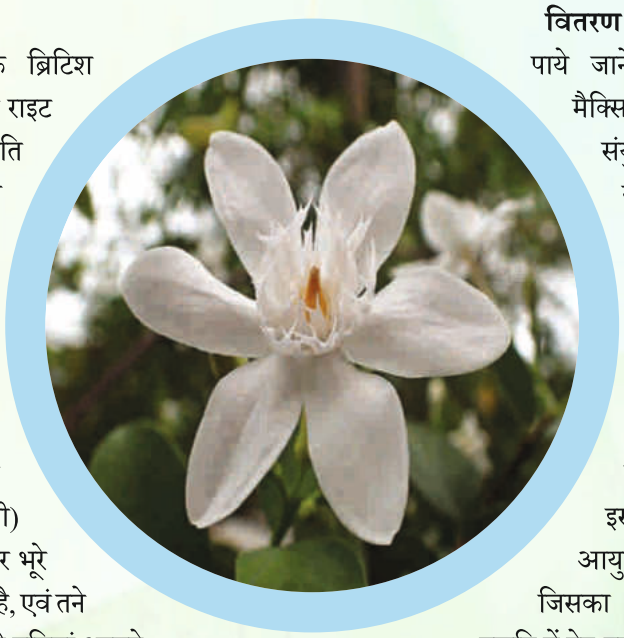

सामान्य आकारिकी - यह एक अर्धपतझड़ी, संक्षीरधर (लैटिसीफेरस) झाड़ है जोकि 2 मीटर तक ऊँचा होता है। इसकी शाखाएं द्विभाजी एवं छत्र (कैनोपी) लगभग 1.5 मीटर चौड़ा, छाल धूसर भूरे रंग का जिसपर लम्बवत लकीर होता है, एवं तने की गॉठ (नोड) चौड़ी होती है। इसकी पत्तियां आमने सामने, अण्डाकार या लम्बा- अण्डाकार, आकार 2-5×1-3 सेमी., गोलाकार या आधार पर कुंठित, किनारे सम्पूर्ण, शिरे पर तीव्र या कुशाग्र,चिकना,रंग गहरा हरा, पार्श्व शिरायें 6-8 जोड़े में जालीदार तथा डंठल 1-3 मिमि. लम्बा होता है। इसका पुष्पक्रम कोरिम्बोस समीमाक्ष (साइम) 2-8 फूलों वाला एवं डंठल युक्त होता है। इसके फूल सीधे आकार 1.5-2.5 सेमी तथा पुष्प डंठल बाह्य दलपुंज से लंबे होते है। बाह्य दलपुंज हरे रंग का, गुम्बदाकार पंचखंडीय तथा प्रत्येक खंड 1.5-3 मिमी लम्बा चिकना एवं ग्रन्थीय शल्कों के एकान्तर में स्थित होता है। दलपुंज नलिका सफेद रंग का, 1-2 सेमी. लंबा, पॉचखंडीय, रंग सफेद, आकार चम्मच के जैसा एवं ताज गुच्छीय कतार में, सूक्ष्म रोमिल होते हैं। पुंकेसर, बहुत छोटे परागकोष रेशा के साथ दलपुंज नलिका के मुंह पर धंसे होते हैं तथा परागकोष हल्के पीले रंग के, जो कि शिरे पर तीव्र, तीर के सिरे की तरह एक दुसरे से चिपके हुए दलपुंज नलिका से निकले होते हैं। इसका फल दो मेरीकार्प (एक फल का एक खंड) से बना हुआ फालिकिल होता है जो कि बेलनाकार नुकीले आकार का, 15×0.5 सेमी. अरोमिल (बिना रोम का), रंग हरा व एवं बहुबीजीय होता है। इसके बीज रैखिक,धूसर भूरे रंग के जिसके एक किनारे पर बालों का गुच्छा होता है।

वितरण - यह मूल रूप से श्रीलंका में पाये जाने वाला पौधा है जो कि मैक्सिको, भारत, फिलीपीन्स एंव संयुक्त राज्य अमेरिका के उद्यानों में सुन्दर, सौम्य, सफेद फूलों एंव औषधीय गुणों के कारण संवर्धन किया जाता है

प्रयोग - इस पौधे को मुख्य रूप से इसके सफेद फूलों के कारण सजावटी झाड़ी के रूप में उगाया जाता है। इस पौधे के बारे में जानकारी आयुर्वेद में बहुत पहले से ज्ञात है जिसका उपयोग पारम्परिक औषधीय पद्धति में पेट-दर्द एवं दस्त में बहुतायत से होता है। इसकी जड़,पत्तियां, छाल, एवं फूलों का उपयोग विभिन्न औषधीय गुणों में होता है। इसके छाल का रस रोगाणुरोधी, दर्दरोधी, सोरायसिस, मुंह के छालों के लिए, त्वचाशोथ एवं अन्य चर्मरोगों में इस्तेमाल होता है।

वनस्पति वाणी अंक 28: 65-69 (2019)
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

गोचा-ला ट्रेक: सिक्किम, हिमालय की गोद में एक वानस्पतिक स्वर्ग

सुभोजीत लाहिड़ी, सुधांशु शेखर दाश, विपिन कुमार सिन्हा एवं माधव कुमार झा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

गोचा-ला लेक का एक वृहंगम दृश्य

जोंगरी-गोचा-ला सिक्किम, हिमालय की गोद में बसा एक रोमांचकारी ट्रेकिंग गलियारों में से एक है, यह कंचनजंगा बायोस्फीयर रिजर्व के उच्चतम पारिस्थितिकी तंत्र में से एक है, जो यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थल के रुप में भी दर्ज है। यह पर्वतारोहण के लिए बहुत महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है और कई देशी-विदेशी पर्वतारोही इस क्षेत्र में पर्वतारोहण करते हैं, इसलिए स्थानीय अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से इकोटूरिज्म पर निर्भर करती है, और यह असंगठित क्षेत्र में ट्रैकिंग गाइड, कुली और कई टूर ऑपरेटरों के रूप में लोगों को रोजगार मुहैया करवाता है।

स्वर्टिया हुकेरी सी.बी. क्लार्क

अब तक हमने इस क्षेत्र में हिमालयी अध्ययन परियोजना पर राष्ट्रीय मिशन के तहत भारतीय हिमालयी लैंडस्केप में दीर्घकालिक निगरानी भूखंडों के माध्यम से जैव-विविधता मूल्यांकन के बारे में हमारे अविरत अध्ययन के संबंध में चार ट्रैक पूरे किए हैं। हमने मुख्य रूप से इस क्षेत्र की जैव विविधता की स्पष्ट तस्वीर प्राप्त करने के लिए मानसून काल और मानसून उपरांत काल में वानस्पतिक सर्वेक्षण किया।

हमारा यह पहला ट्रैकिंग अनुभव ही बहुत रोमांचकारी और कठिन था। इस ट्रेकिंग की दुर्गमता के कारण, हमने अपनी यात्रा को कई दिनों में बांटा। यह वानस्पतिक सर्वेक्षण कॉरिडोर पश्चिम जिले में स्थित सिक्किम की पहली राजधानी युकसोम से शुरू किया गया है। जोंगरी-गोचा-ला ट्रेकिंग कॉरिडोर की ऊंचाई लगभग 1700 से 5000 मीटर तक है। जोंगरी को एक तरफ सिंगाली ला रेंज

के साथ जोड़ा गया है जबकि दूसरी तरफ इसे कंचनजंघा बेस कैंप से जोड़ा गया है। जोंगरी, कोकचुरंग, थांगसिंग, लामुनी, गोचा-ला पश्चिम सिक्किम के अल्पाइन क्षेत्र के सबसे महत्वपूर्ण विशिष्ट पारिस्थितिक तंत्रों में से एक हैं। इस पथ को ट्रैक करने के लिए, शुरुआत युकसोम से शुरू होने के बाद, बखिम हमारी ट्रेकिंग का पहला पड़ाव था। अगले दिन, हमने बखिम से अपनी यात्रा शुरू की और तशोका और फेदंग के रास्ते जोंगरी पहुँचे। फेदांग 3800 मीटर की ऊँचाई पर स्थित उप-अल्पाइन वनस्पति को दर्शाता है। अल्पाइन क्षेत्र जोंगरी की तलहटी से शुरू होता है जिसे देवराली (3900 मीटर) के रूप में जाना जाता है, यह जोंगरी के ऊपरी हिस्से तक फैला हुआ है।

जोंगरी में हम चार दिनों के लिए वन परिसर में रूके, जोंगरी की वानस्पतिक विविधता मिश्रित प्रकार की है, यहां कहीं केवल घास के मैदान है तो दूसरी और रोडोडेंड्रोन वन हैं, इस क्षेत्र में मुख्य रूप से भेड़, घोड़े और याक चारण देखा जा सकता है। जैव विविधता के आंकलन और उसके आसपास के क्षेत्र का सर्वेक्षण करने के पश्चात, हम कोकचुरंग जाते हैं। जोंगरी के बाद, अल्पाइन क्षेत्र कोकचुरंग (ऊंचाई 3800 मीटर) है।

कोकचुरंग पहुंचने से पहले 400 मीटर नीचे की ओर ट्रैकिंग पथ है, जिसमें ज्यादातर *रोडोडेन्ड्रॉन होजगोसोनाई* के क्षुप वन हैं। कोकचुरंग, शिविर स्थलों के रूप में विख्यात है, विदेशी पर्यटकों की भारी भीड़ के कारण शिविर लगभग भरा हुआ था इसलिए यहाँ हम अगले 2 दिनों के लिए एक तंबू में रुके। यहाँ से हमारे अगले पड़ाव थांगसिंग की दूरी लगभग 2 किमी है। हम कोकचुरंग के रास्ते थांगसिंग की ट्रैंकिग यात्रा प्रारम्भ की, कोकचुरंग और थांगसिंग के बीच एक खूबसूरत घाटी है, जिसे माउंट पंदीम के एक अद्भुत दृश्य के साथ प्रीच चू, शुद्ध मीठे पानी के सबसे बड़े स्रोतों में से एक है। प्री-मॉनसून सीजन के दौरान माउंट कंचनजंघा और माउंट पंदीम से बहुत ठंडी हवा की लहर इस क्षेत्र से गुजरती है, जोंगरी सहित पूरा क्षेत्र कोकचुरंग और फेडांग पूरी तरह से बर्फ से ढके हुए थे। यहां हम दो रात के लिए रूके और आस-पास के क्षेत्र का सर्वेक्षण किया।

दो रात रुकने के बाद हम लामुनी के लिए चल पड़े, लामुनी 4000 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। लामुनी के बाद, बर्फ का तूफान और मौसम के अधिक प्रतिकूल स्थिति के कारण माउटेंन सिकनेस होने की संभावना बढ़ जाती है। हमारे क्षेत्र के गाइड श्री बखबीर सुब्बा और उनकी टीम के अनुभव के कारण, हम इस प्रतिकूल परिस्थिति को दूर करते हुये और मुख्य रूप से समिति झील और गोचा ला चरण 1 क्षेत्र में सर्वेक्षण का कार्य पूर्ण कर सके।

1. *एरोफाइटन वालिचाइ* बेन्थ; 2. *पेडिकुलरिस रोइली* मैक्सिम.; 3. *रोडोडेंड्रोन थॉमसनी* हुक. एफ.; 4. *रोडोडेंड्रोन लैनाटम* हुक. एफ.।

1. थेनिंग में मिट्टी संग्रह (3800 मीटर); 2. जोंगरी में पादप संग्रह; 3. जोंगरी शिविर में एकत्रित किए गए पादप नमूनो का प्रसंस्करण; 4. 1x1 मीटर क्वारडेट में शाकीय पौधों का अध्ययन।

गोचा ला पहुंचने से पहले हमने समिति झील को पार किया, जो अलग-अलग समय पर अलग-अलग रंग रूप की दिखाई देती है। इसका पानी मानसून और मानसून के पश्चात हरे रंग की तरह दिखता है, लेकिन यह प्री-मानसून के दौरान जम जाता है। कुछ दूरी के भीतर बड़े बदलाव और ऑक्सीजन की कम मात्रा के कारण पादप सर्वेक्षण और संग्रहण के साथ-साथ ट्रैकिंग करना अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाता है। *इरियोफाइटोन वालिचाइ* और *रह्यूम नोबाइल* उच्च शिखरीय पौधे हैं, जो विशेष रूप से इस क्षेत्र में पाए जाते हैं।

गोचा ला ट्रेकिंग कॉरिडोर का अंतिम पड़ाव है, हालाँकि, इसके तीन अलग-अलग चरण हैं। चरण -1, चरण -2 और चरण -3। पर्यटक को केवल गोचा ला चरण 1 तक जाने की अनुमति दी जाती है इसके बाद हिम तेंदुआ संरक्षण क्षेत्र में प्रारम्भ हो जाता है। गोचला चरण 3 अंतिम है, जिसे यंगजेटर के रूप में भी जाना जाता है, यह सिक्किम के लोगों के लिए एक पवित्र स्थान है। यहाँ वनस्पति कम मुख्य रूप से शाकाहारी प्रजातियों का वर्चस्व है और अंततः गोचा-ला ऊंचाई (4700 मीटर) के माध्यम से विस्तारित है।

क्षेत्र की जलवायु को विलक्षण बनाने में लंबे मानसून और दीर्घकालिक शीत ऋतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यहां की पादप विविधता जलवायु और समुद्र तल से ऊंचाई के फल स्वरुप भिन्नता लिए हुए हैं। इस क्षेत्र की वनस्पति को 4 भागों में वर्गीकृत किया गया है

यह निम्न उष्ण-कटिबंधीय में गर्मियों में मध्यम उप समशीतोष्ण वन में और उच्च अल्पाइन बीहड़ों में सर्दियों में ठंड एवं मध्यम गर्म होता है। इसकी वनस्पति भी ऊंचाई और जलवायु के अनुसार बदलती रहती है।

1. उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र (1700 – 2200 मीटर)

1. *प्रिमुला प्रिमुलिना* (स्प्रेंग.) एच. हारा; 2. *वेरोनिका सिलियाटा उप। सेफलोइड्स* (पेनेल) डी.वाई. हांग; 3. *रोडियोला हेलेनेंसिस* (डी. डॉन) एस.एच. फू; 4. *मायिकारिया रसिया* डब्ल्यू.डब्ल्यू. एस.एम.; 5. *प्रिमुला कैल्डेरियाना* बाल्फ. च. और आर.ई. कूपर; 6. *रोडोडेंड्रोन सिनाबरिनम* हुक. एफ.; 7. *रयूम नोबल* हुक एफ एंड थॉमसन; 8. *लागोटीस कुनावुरेंसिस* रूप.।

युक्सोम से साचेन तक उपोष्णकटिबंधीय वन क्षेत्र मुख्य रूप से विभिन्न वृक्ष प्रजातियों की प्रचुर उपलब्धता वाला है जिसमें *अलनस नेप्लेन्सिस, कैस्टानोप्सिस ट्रिबुलोइड्स, क्रिप्टोमेरिया जैपोनिका, रोडोडेंड्रोन अर्बोरम, सौरिया नोपुलेंसिस*, आदि प्रमुख झाड़ियाँ *बुडलेजा कॉल्विले* हैं। *डिचरो फब्रिफुगा, ऑक्सिस्पोरा पनिक्कलता, रूबस एलिप्टिपिकस* आदि प्रमुख शाकीय जड़ी-बूटियों की प्रजातियाँ हैं *एकाइरेन्थस अस्परा, एकाइरेन्थस ब्यूडाटा, इंपेशियस अरगुटा इंपेशियंस स्टेन्था, ओफियोराइजा सुसीरुब्रा, पैनैक्स स्यूडोगिनसेंग* आदि।

2. शीतोष्ण क्षेत्र (2300 - 3000 मीटर)

समशीतोष्ण वन साचेन से लेकर फेदंग तक है। ट्रेकर्स के लिए ये वन ताजे पानी का एकमात्र स्रोत हैं। साचेन शिविर के को पार करने के बाद चिरचिरे के नाम से प्रसिद्ध यह भाग मानसून के मौसम के दौरान लगभग सूखा होता है। इस क्षेत्र में प्रमुख वृक्ष प्रजातियां जैसे *एसर कैंपबेल्ली, अलनस नेप्लेन्सिस, बिटूला यूटेलिस, लिथोकार्पस पैचिफाइलस, ल्योनिया ओवलिफिसिया, मैगनोलिया कैंपबेल्ली, मैलस सिक्कीमेंसिस, क्वेरकस लैमेलोसा, रोडोडेंड्रोन अर्बोरम, रोडोडेन्ड्रन ग्रैंडी, टैक्सस बेक्काटा, सुगा डुमोसा* इत्यादि। इस क्षेत्र में पाए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण वनस्पति पौधे *रुमेक्स नेप्लेसिस, सिनोपोडोफाइलम हेक्जेन्ड्रम, स्वर्टिया चिरायता* आदि हैं।

3. उप-अल्पाइन क्षेत्र (3000 - 4000 / 4100 मीटर)

ट्रेकिंग कॉरिडोर के सबअल्पाइन जोन में फेदंग से जोंगरी तक फैला हुआ है, जिसमें अलग-अलगरोडोडेंड्रॉन जाति के वृक्षों की कतारें देखी जा सकती हैं। जिनमें *रोडोडेंड्रोन अर्बोरम, रोडोडेंड्रोन बारबेटम, रोडोडेंड्रोन कैम्पानुलैटम, रोडोडेंड्रोन सिनाबरिनम, रोडोडेंड्रॉन ग्रैंडी, रोहडोडेन्ड्रॉन होजगोसोनाई, रोडोडेंड्रोन थोमसोनाई* आदि विभिन्न प्रजातियां इस क्षेत्र में मुख्य हैं जैसे *कैसिओप फास्टिगाटा, गलथेरिया पाइरोलाइड्स, पेडिकुलरिस लोंगिफ्लोरा, पेडिक्यूलेरिस साइफोन्था*, *प्रिमुला* प्रजातियां आदि।

4. अल्पाइन क्षेत्र (4000- 4500 मीटीर)

यह क्षेत्र जोंगरी से गोचा-ला तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में पाए जाने वाले प्रमुख पौधों की प्रजातियाँ में *एबिस डेन्सा, डैक्टेलोराइजा हथाजिरिया, एल्शोल्ट्जिया ब्लैंडा, जेरेनियम कोनियम, इंपेशियंस हाबसोनाई, लगोटिस कुनावुरेंसिस, जेंशियाना स्टाइलोफोरा, बिसटोर्टा विविपारा, पोटेंटिला पेडुनेकुलिस, प्रिमुला कैल्डेरियाना, प्रिमुला ओब्लाइका, प्रिमुला प्रिमुलिना*, *प्रिमुला सिक्कीमेंसिस हुक, रयूम एक्यूमिनटम, रोडोडेंड्रोन एंथोपोगोन, नारडोस्टैचिस जटामांसी, विकटिया कोनिफोलिया* आदि।

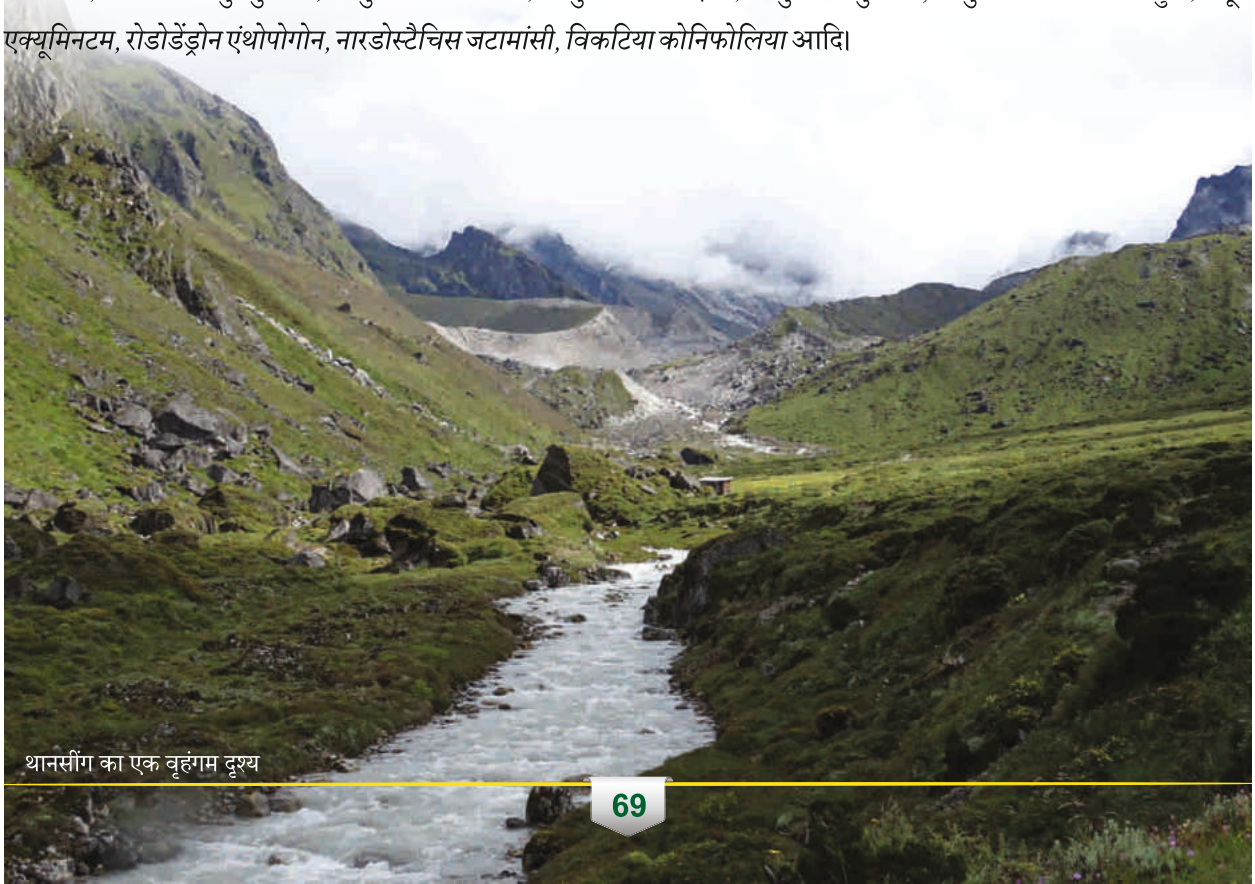

थानसींग का एक वृहंगम दृश्य

व्यक्तित्व

प्रो. एन. आनंद (1947-2018): प्रख्यात शैवालविद्

आर. के. गुप्ता, सुदीप्त कुमार दास एवं एस. नागराज*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा
*मद्रास विश्वविद्यालय

प्रोफेसर नारायण स्वामी आनंद का जन्म तमिलनाडु के चेन्नई महानगर में 28 दिसम्बर 1947 में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा चेन्नई में हुई। इन्होंने लोयला कॉलेज चेन्नई से 1967 में वनस्पति विज्ञान में स्नातक तथा अन्नामलई विश्वविद्यालय से 1969 में स्नातकोत्तर किया, जिसमें उन्हें प्रथम स्थान प्राप्त करने पर स्वर्ण पदक मिला। इन्होंने नील हरित शैवाल पर विश्व प्रसिद्ध शैवालविद् प्रो. टी. वी. देसिकाचारी के मार्गदर्शन में 1976 में डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की। फुलटॉन फेलोशिप के लिए चुने जाने के बाद वे 1992 में इंग्लैड़ चले गए जहाँ पर उन्होंने नील हरित शैवाल पर गहन शोध किया। मद्रास विश्वविद्यालय से 1996 में संस्कृत में साहित्य शिरोमणि और 2003 में डॉक्टरेट इन साइंस किया। इसी विश्वविद्यालय में वे व्याख्यात के पद पर 1972 - 1983, रीडर के पद पर 1984-1989, प्रोफेसर के पद पर 1990-2003 और निदेशक के पद पर 2003-2007 तक कार्यरत रहे। तत्पश्चात् विज्ञान के अनुसंधान विभाग में 2004-2006 तक डीन भी रहे।

उनके उत्कृष्ट कार्य को देखते हुए उन्हें मद्रास एजुकेशनल ट्रस्ट के द्वारा 1995 में एक्सीलेंस अवार्ड प्रदान किया गया। तथा मद्रास साइंस फाउंडेशन द्वारा 2006 में फैलो भी चुने गये। सेवानिवृत्त होने के बाद एमेरेट्स प्रोफेसर तथा वेल्स यूनिवर्सिटी मद्रास के प्रथम कुलपति के रूप में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 3 जून 1999 को 'अखिल भारतीय समन्वित परियोजना' की योजना बनाई गई जिसमें शैवाल के आर्थिक महत्व को समझते हुए इसमें शामिल किया गया और प्रो. देसिकाचारी के निर्देश से इस परियोजना में शैवाल क्षेत्र को समन्वय करने का दायित्व प्रो. आनंद को सौपा गया। इसके अंतर्गत विशेषकर स्वच्छ जलीय शैवालों के अध्ययन की रुपरेखा बनाई गई, विशेषकर बहते हुए प्राकृतिक वास (नदी, जलप्रपात) और रूके हुए स्वच्छ जलीय प्राकृतिक-वासों (तालाब, पूल, झील आदि)। क्योंकि भारत में स्वच्छ जलीय शैवालों पर कम शोध किया गया था। इसका उद्देश्य स्वच्छ जलीय शैवाल का डेटाबेस तैयार करना, मोनाग्राफ तथा पहचान कुंजी बनाना था। इस काम को गति देने के लिए देश के विभिन्न भागों जैसे तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, असम, नागालैंड, मिजोरम में विशेषज्ञों द्वारा शैवालों का संग्रह कर अध्ययन किया गया। इस दौरान शैवालों की करीब 2000 जातियों का अध्ययन किया गया, जो पूरे देश में पाए जाने वाले शैवालों का एक तिहाई भाग है।

प्रो. आनंद ने तमिलनाडु तथा केरल के स्वच्छ जलीय शैवालों, धान के खेत एवं स्मारकों पर लगे शैवालों, मंदिरों के आसपास के जलीय स्त्रोतों के शैवालों का भी अध्ययन किया।

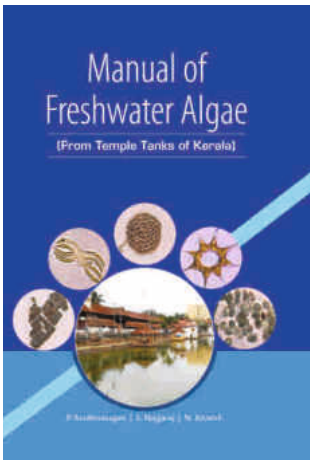

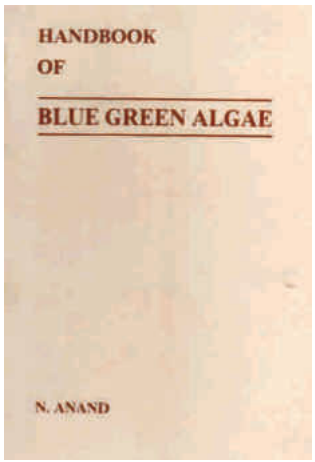

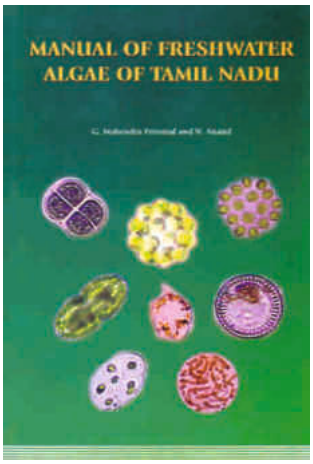

'अखिल भारतीय समन्वित परियोजना' के अंतर्गत शैवालों से संबंधित उन्होंने दो कार्यशालाओं का आयोजन किया जिसमें देश विदेश के विभिन्न क्षेत्रों से प्रोफेसर, वैज्ञानिक एवं शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों ने भाग लिया था। यह भारत में शैवाल अध्ययन के प्रचार प्रसार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। भारत से सन् 1960 से लगातार प्रकाशित होने वाले शैवाल शोध से संबंधित विश्व प्रसिद्ध फाईकस जर्नल के किसी कारणवश बंद हो जाने के बाद प्रो. आनंद के अथक प्रयास के द्वारा इसे 2012 में पुनजीर्वित किया गया।

उनके मार्गदर्शन में छह विधार्थियों ने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके साथ ही प्रो. आनंद के द्वारा कई पुस्तकें लिखी गई जो निम्न है:

1. हैंडबुक ऑफ ब्लू ग्रीन एल्गी ऑफ राइस फील्ड ऑफ साउथ इंडिया 1989
2. इंडियन फाइकोलोजिकल रिव्यू: सायनोफाइटा 1993
3. इंडियन फ्रेश वॉटर माइक्रो एल्गी 1998
4. एल्गोलॉजिकल रिसर्च इन इंडिया 2002
5. बॉयलोजी एंड बायोडाइवर्सिटी ऑफ माइक्रोएल्गी 2009
6. मैनुअल ऑफ फ्रेश वॉटर एल्गी फ्राम टेम्पल टैंक ऑफ केरल 2016

प्रो. आनंद हमेशा अपने सहयोगियों को शैवालों के अलग-अलग क्षेत्रों में शोध के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। आज भी उनके द्वारा संग्रहित विभिन्न शैवाल, छायाचित्र, रेखाचित्र मद्रास विश्वविद्यालय में सुरक्षित हैं, जो शैवाल विज्ञान में कार्यरत और शोधकर्ताओं के लिए ज्ञानवर्धक सामग्री के साथ-साथ शिक्षकों एवं वैज्ञानिकों के लिए प्रेरणास्त्रोत है। विज्ञान को समर्पित इस महान विभूति ने 22 दिसम्बर 2018 को अपने निवास स्थान चेन्नई में अंतिम सांसें ली। शैवाल विज्ञान के क्षेत्र में प्रो. आनंद के द्वारा दिया गया योगदान कालांतर तक याद किया जाएगा।

वनस्पति वाणी अंक 28: 72-73 (2019)
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

प्रकृति की अदभुत् फाइबोनासी अंक व्यवस्था

सौरभ सचान

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

फाइबोनासी अंक पद्धति को निगमित करने का श्रेय लियोनार्डो पिसानो उर्फ "*फाइबोनासी*" को जाता है। लियोनार्डो पिसानों का जन्म इटली के एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। कालान्तर में वह अपनी गणितीय आकलन व गणनाओं के लिये बहुत प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अपने समय की तत्कालिक समस्या 'खरगोशों की लगातार बढ़ती हुई आबादी पर' अपनी अंक गणितीय व्याख्या दी। इस व्याख्या का प्रकाशन उन्होंने अपनी पुस्तक 'लाइबर एवेसी (1202)' में किया। उनके अनुसार प्रकृति में उपलब्ध अनेक वस्तुओं में *फाइबोनासी* गणितीय मापदण्ड निहित होता है उदाहरणार्थः पौधों में पत्तियों एवं टहनियों के लगने का क्रम, हाथी चोक, गुलाब, गेंदा, सूरजमुखी पुष्पों में पंखुड़ियों के लगने का क्रम इत्यादि।

लियोनार्डो पिसानो "फाइबोनासी"

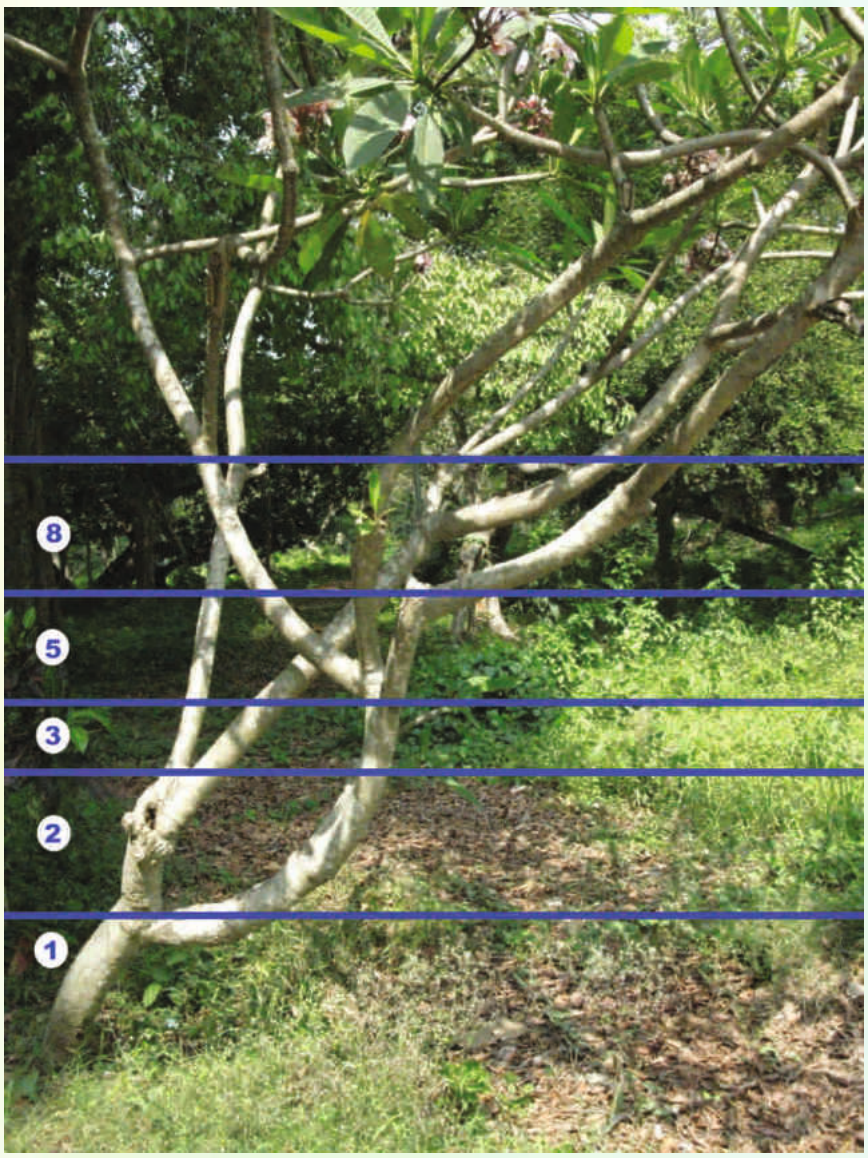

प्लुमेरिया अल्बा – वृक्ष के तने में फाइबोनासी अंकीय व्यवस्था

सन् 1754 में चार्ल्स बोनेट ने भी पौधों के कुण्डलीनुमा पर्ण विन्यास में *फाइबोनासी* गणितीय व्यवस्था समाविष्ट होने का समर्थन किया। हेलमट वोगेल ने सन् 1979 में भी सूरजमुखी पुष्प के मुण्डक पुष्प क्रम में पंखुड़ियों के विन्यास में *फाइबोनासी* गणितीय प्रारूप होने का दावा किया। *फाइबोनासी* क्रम के गुणधर्मो को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है। इस प्रक्रम में प्रत्येक अंक अपने पूर्ववर्ती अंक का योग होता है।

0, 1, 1, 2, 3, 5, 8, 13, 21, 34, 55, 89, 144, 233, 377, 610, 987...।

एवं इस प्रकार एक अवस्था के बाद इसका मान 1.618 नियत हो जाता है। इसे मुख्यतः ग्रीक भाषा के शब्द फाई (Φ) से प्रदर्शित किया जाता है।

$$\frac{F_{n+1}}{F_n} = 1.618$$

(Φ) के नियत मान 1.6180339887 को स्वर्णानुपात भी कहा जाता है। एवं इस स्वर्णानुपात व *फाइबोनासी* कुंडल का प्रयोग प्रकृति के अनेकानेक वस्तुओं में देखने को मिलता

लुड्विजिया पेरिनेन्सीस

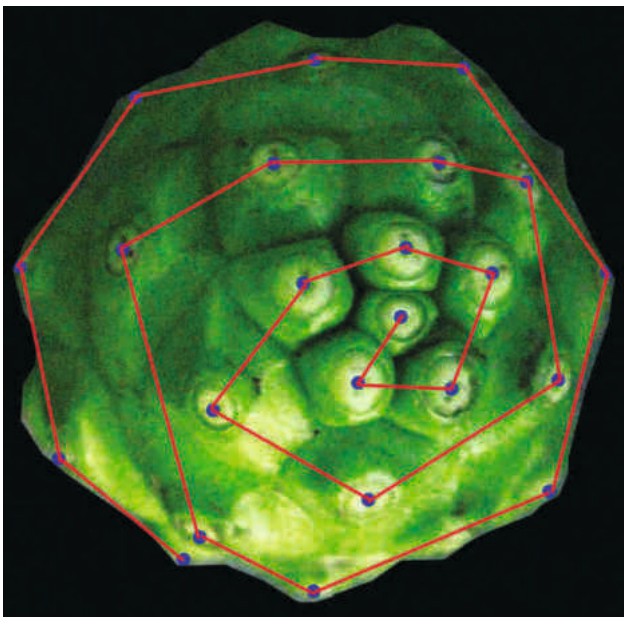

मोरिंडा सिट्रीफोलिया

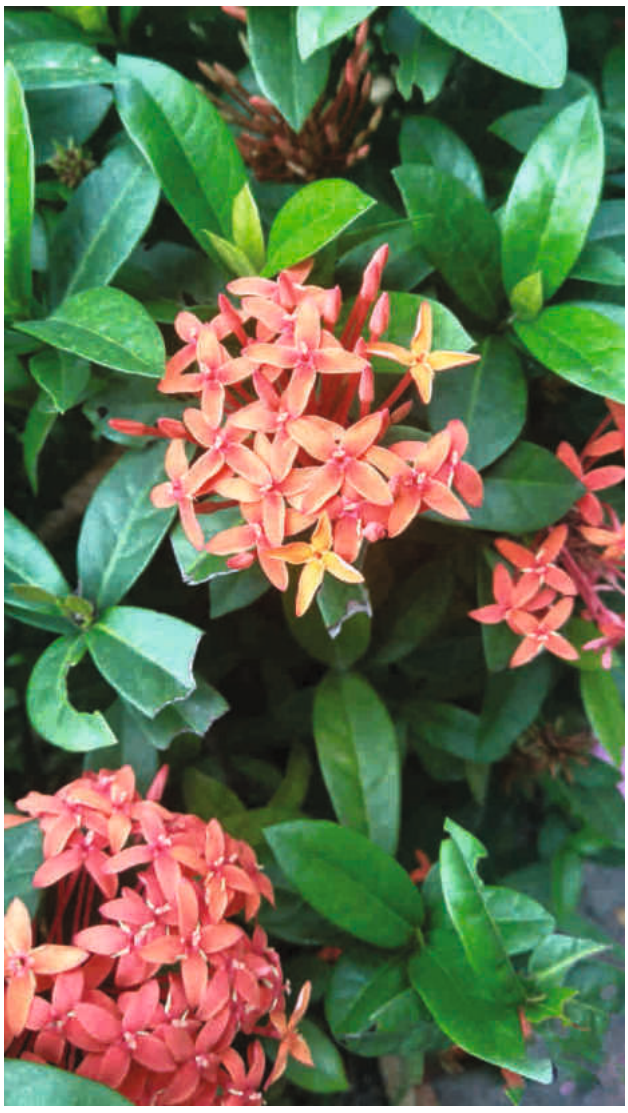

इक्जोरा चाइनेंसिस

है। जैसे: कम्प्यूटर प्रोग्राम एवं सुरक्षा कूट बनाने, पिरामिडो में गुम्बदो, चार-दीवारों, खिड़कियों के निर्माण, प्यानों के सुरो एवं घोंघो के कवच एवं मयूर पंख विन्यास, मानव शरीर संरचना व्यवस्था इत्यादि में।

नोबल पुरस्कार विजेता रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार ''यदि सूक्ष्मता से निरीक्षण किया जाये तो *फाइबोनासी* प्रक्रम प्रकृति में विद्यमान प्रत्येक वस्तु में है, जो कि कदाचित आश्चर्यजनक है।''

आचार्य जगदीश चन्द्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा स्थित एक पेड़ *प्लूमेरिया एल्बा* में शाखाओं के निकलने के क्रम पर गहनता से अध्ययन करने पर उपयुक्त कथन तर्कसंगत प्रतीत होता है परन्तु यह पूर्णतया सत्य नही है एवं अपवाद स्वरूप कुछ पुष्पों अथवा वस्तुओं में ल्यूकास की दी गई गणितीय व्याख्या भी देखने को मिलती है जैसे, *ऑनाग्रासी, जनसेनासी, रूबीएसी, एकप्पारासी* एवं *क्रूसीफेरी* इत्यादि कुल के पुष्पो में।

इस अंक व्यवस्था का प्रारम्भ 0 अथवा 1 से न होकर एक सम अंक 2 से होता है एवं यह व्यवस्था/क्रम निम्न प्रकार से दर्शाया जाता है।

2, 1, 3, 4, 7, 11, 18, 29, 47, 76, 123...।

यद्यपि ल्यूकास की परिकल्पना भी *फाइबोनासी* प्रक्रम से ही प्रेरित है परन्तु यह क्रम *फाइबोनासी* क्रम के पूर्णतया विपरीत था। अर्थात् प्रकृति में फाइबोनासी एवं ल्यूकास अंक गणितीय क्रम दोनों ही देखने को मिलते है। अन्ततः लियोनार्डो द विंसी के कथानुसार ''आओ देखना सीखें एवं अनुभव करें की प्रकृति की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक से किस प्रकार संबंधित है''।

वैश्विक वर्गीकरण पहल [ग्लोबल टैक्सोनोमी इनिशिएटिव - जीटीआई]

प्रशांत केशव पुसालकर एवं पी. लक्ष्मीनरसिम्हन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

वर्गीकरण (टैक्सोनोमी) जीवों के नामकरण, वर्णन और वर्गीकृत करने का विज्ञान है और इसमें सभी पौधों, जानवरों और सूक्ष्मजीवों को शामिल किया गया है। 'वर्गीकरण विज्ञान' सजीव दुनिया के ज्ञान और इसकी विशिष्टता के साथ इन विशिष्टताओं को प्रदान करने वाले जैविक विविधता के घटकों की पहचान और गणना करता है। वानस्पतिक वर्गीकरण वैज्ञानिक (टैक्सोनोमिस्ट) वनस्पतियों के आकारिकी, अनुवांशिक और जैव रासायनिक विशेषताओं के अवलोकनों का उपयोग प्रजातियों की पहचान, वर्णन और वर्गीकरण के लिए करते हैं। वानस्पतिक दुनिया की मूलभूत समझ और इसके संरक्षण के लिए वर्गीकरण विज्ञान का ज्ञान सबसे महत्वपूर्ण है। वर्तमान परिदृश्य में जब मानव गतिविधियों के परिणामस्वरूप वैश्विक जैव विविधता उच्च दर से समाप्त हो रही है, तब प्राथमिकताओं के आधार पर प्रजातियों की खोज, आंकलन और पहचान करने के लिए विशेषज्ञ कौशल वाले वानस्पतिक वर्गीकरण वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

जीवों के समूहकरण और नामकरण (स्थानीय नाम) के रूप में वर्गीकरण मानव अस्तित्व के साथ प्रारंभ हुआ और, मानव विकास के समानांतर, यह विशेषता, पहचान और व्यवस्थित वर्गीकरण विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है। शुरुआत से ही, वानस्पतिक वर्गीकरण, आकारिकीय विशेषताओं पर आधारित है और आज आण्विक विश्लेषण के साथ, यह विज्ञान नैनो-स्तर तक पहुंच गया है। लिनियस के कृत्रिम वर्गीकरण से बेंथम-हुकर के प्राकृतिक समझे गए वर्गीकरण प्रणाली तक, मुख्य रूप से यह मैक्रो-कैरेक्टराइजेशन (बाह्य-आकारिकी विशेषता) के आसपास घूमता रहा है। हालांकि, प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ, विशेष रूप से बेहतर प्रयोगशाला और माइक्रोस्कोप (सूक्ष्मदर्शी) सुविधाओं की उपलब्धता से, यह रचनात्मक और रासायनिक-वर्गीकरण (वानस्पतिक-रसायन विज्ञान/ कीमो-टैक्सोनोमी), पेलिनो-टैक्सोनोमी विशेषताओं और फिर संख्यात्मक वर्गीकरण (न्यूमेरिकल टैक्सोनोमी) से क्लैडिस्टिक्स वाले गणितीय दृष्टिकोण के विश्लेषणात्मक तरीकों जैसे अग्रिम पथ पर बढ़ा है। सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार के साथ, वैज्ञानिक छोटी आकारिकीय विशेषताओं और सूक्ष्म प्रक्रियाओं को देखने में सक्षम हुए और आंतरिक संरचना, विकास और सेल विभाजन वनस्पतियों के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण विषय बन गए। गुणसूत्र-स्तर की विशेषता (केरीयोमोर्फोलॉजी) के अध्ययन से कोशिका-अनुवाशिकी शाखा का विकास हुआ। अल्ट्रा स्ट्रक्चरल स्टडीज, जिनमें स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप (एसईएम) और ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप (टीईएम) शामिल हैं, की वजह से टैक्सोनोमिक समूहों की सीमा और आवृतवीजियों के फाईलोजेनी अध्ययन में माइक्रो-कैरेक्टराइजेशन स्तर प्राप्त हुआ है। स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप जैसे आधुनिक उपकरणों ने सूक्ष्म-स्तर पर शारीरिक विविधीकरण का खुलासा किया और वर्गीकरण शब्दावली को समृद्ध किया। वर्गीकरण विज्ञान में वर्गीकरण (टैक्सोनोमिक), साहित्य और पादपालय (हर्बेरिया) सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

पिछले पचास वर्षों में, वर्गीकी वैज्ञानिकों ने वनस्पतियों के परिवार, वंश और प्रजातियों के बीच संबंध को समझने के लिए अधिक सटीक तकनीकों की तलाश शुरू कर दी। 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आण्विक जीवविज्ञान ने प्रोटीन संश्लेषण के साथ डीएनए और आरएनए की संरचना की खोज करके सभी स्तरों पर जीवविज्ञान अध्ययन में क्रांति की है। जीवविज्ञानी (वानस्पतिक वर्गीकरण वैज्ञानिक) अब आण्विक तकनीकों का उपयोग प्राथमिकताओं से कर रहे हैं, और कई प्रतिक्रियाओं और तंत्रों की खोज कर रहे हैं जो अतीत में उपलब्ध नहीं थी। समूह की उत्पत्ति क्या है? कौन से समूह से संबंधित है? और कई अन्य प्रश्नों को ध्यान में रखकर अब सटीकता के साथ विकास की पहचान करना संभव हुआ है। आण्विक (सशक्त डीएनए-आधारित दृष्टिकोण (डीएनए बारकोडिंग)) तकनीकों ने वानस्पतिक विज्ञानियों को पौधों की आंतरिक संरचनाओं और विशेष रूप से गुणसूत्र संरचना, डीएनए अनुक्रमों और जीनोम संरचना के अंदर आगे बढ़ने में मदत की है। आण्विक वर्गीकरण में इस अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों की तुलना वर्गीकरण के अन्य शाखाओं से प्राप्त डेटा से की जाती है और, इन सभी डेटाओं का क्लैडिस्टिक विश्लेषण और फाईलोजेनेटिक व्याख्या के लिए उपयोग किया जाता है। आण्विक वर्गीकरण, अर्थात् डीएनए अनुक्रमण और फाईलोजेनी अध्ययन के साथ हमें विकास और विविधीकरण के आधार पर सोच का एक नया तरीका मिला है, जिसके परिणामस्वरूप वास्तविक प्राकृतिक समूहों और विकास की समझ में अधिक स्पष्टता आई हैं। एंजियोस्पर्म फाईलोजेनी समूह (एपीजी) के आण्विक वर्गीकरण से बदली वर्तमान गण/जीनस सीमाओं (विलय और विभाजन) के परिणामस्वरूप हजारों प्रजातियों के नाम परिवर्तन हुए हैं, जो शैवाल, कवक और पौधों के अंतर्राष्ट्रीय कोड (इंटरनेशनल कोड ऑफ बॉटनिकल नामकरण) द्वारा निर्देशित है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि

आण्विक तकनीक से विकास की प्रक्रियाओं की खोज करने की कोशिश वर्तमान में सबसे महत्वपूर्ण है, पर जीनोम संरचनाओं के अध्ययन के माध्यम से फाईलोजेनेटिक संरचनाओं और विकासक्रम का पता लगाने का मतलब यह नहीं है कि वानस्पतिक वर्गीकरण की मूल संरचना और आकारिकीय वर्गीकरण भूल जाए। सटीक प्राकृतिक वर्गीकरण और वनस्पति समूहों के बीच संबंधों को समझने के लिए हमें आण्विक अध्ययन के अलावा वर्गीकरण के सभी पहलुओं से डेटा इकट्ठा करना होगा और इसमें आकारिकीय सबसे महत्वपूर्ण है। हालांकि आज वनस्पति वर्गीकरण सभी आधुनिक तरीकों का उपयोग करता है, लेकिन यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यह कोई भी पारंपरिक पद्धति को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता और आज भी प्रजाति की पहचान में मैक्रो-मॉर्फोलॉजिकल (बाह्य-शारीरिक) विशेषताओं का गुणात्मक मूल्य सबसे अधिक और अपरिवर्तनीय है। इसके अलावा हमें यह समझना चाहिए की फाईलोजेनी ग्रुपिंग को समझने के लिए मैक्रो और माइक्रो-मॉर्फोलॉजी के आधार पर बने समूहों का मूल ज्ञान सबसे महत्वपूर्ण एवम प्राथमिक जरुरत है।

वर्तमान में ऑनलाइन जैव विविधता सूचनाओं, जैसे नामकरण डेटा बेस (प्लांट लिस्ट, ट्रोपिकोस, आइपीएनआइ, ग्लोबल जैव विविधता सूचना सुविधा, ऑनलाइन लेग्युम, एस्टेरेसी एवं पोएसी डेटाबेस), फोटो-संकलन, ऑनलाइन-विशेषज्ञ-समूह, ई-फ्लोरा, के माध्यम से अत्यधिक और स्वतंत्र रूप से उपलब्ध डेटा और इंटरनेट पर विजुअल ऑनलाइन ई-हर्बेरिया से वानस्पतिक वर्गीकरण (टैक्सोनोमिक) विज्ञान स्वर्णिम पथ पर अग्रसर है। इंडेक्स क्यूवेन्सिस, बीपीएच, टैक्सोनोमिक लिटरेचर, इंटरनेशनल कोड ऑफ बॉटनिकल नामकरण, प्लांट बुक, बॉटनिकल लैटिन, क्षेत्रीय और वैश्विक प्लांट जैसे वर्गीकरण साहित्य (फ्लोरा) की उपलब्धता और उपयोग ने वर्गीकरण विज्ञान में अधिक स्पष्टता और एकरूपता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वर्गीकरण विज्ञान जैव विविधता के घटकों के बारे में बुनियादी समझ प्रदान करता है, जो उसके संरक्षण और टिकाऊ उपयोग के बारे में प्रभावी निर्णय लेने के लिए आवश्यक है। जैव विविधता का प्रभावी आकलन, संरक्षण और प्रबंधन हमारी वर्गीकरण की समझ पर ही निर्भर करता है। दुर्भाग्य से सभी लोग इस तथ्य को भूल जाते हैं कि सामान्य जैव विविधता दस्तावेज़ संकलन और जलवायु परिवर्तन अध्ययनों से लेकर पर्यावरण परिवर्तन आकलन अध्ययनों और जैव विविधता संरक्षण तक कुछ भी, बुनियादी वनस्पति वर्गीकरण के ज्ञान, अच्छे वर्गीकरण विज्ञानी (टैक्सोनोमिस्ट) और हर्बेरिया के बिना संभव नहीं है। भविष्य में पर्यावरण आज से काफी अलग हो सकता है। सभी संकेत बताते हैं कि पर्यावरण अधिक परिवर्तनीय होने की संभावना है। जीनोटाइप और पर्यावरण के बीच जटिल संबंध है और पर्यावरण का जीनोटाइप पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। हम नहीं जानते कि जीनोटाइप या पर्यावरण का कौन सा सबसेट विविधता और फिटनेस की सबसे अधिक रणनीतियों को प्रभावित करेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह और भी महत्वपूर्ण है कि हम मानव गतिविधियों के परिणामस्वरूप खोज से पहले ही कुछ प्रजातियों को खो सकते हैं। इन परिवर्तनों को समझने के लिए हमें प्राथमिकता से बुनियादी वनस्पति विविधता को समझना और उसके संरक्षण के लिए टिकाऊ उपयोग के बारे में प्रभावी निर्णय लेने की आवश्यकता है, और उसके लिए वनस्पतिक वर्गीकरण वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी आवश्यकता है। दुर्भाग्यवश, अपर्याप्त टैक्सोनोमिक सूचना और आधारभूत संरचना, जो टैक्सोनोमिक विशेषज्ञता में गिरावट के साथ मिलती है, संरक्षण, टिकाऊ उपयोग और अनुवांशिक संसाधनों से प्राप्त लाभों के साझाकरण के बारे में सूचित निर्णय लेने की हमारी क्षमता में बाधा डालती है।

पृथ्वी पर अधिकांश प्रजातियां सूक्ष्मजीवों की हैं, जिन्हें सही पहचान के लिए विशेषज्ञ कौशल की आवश्यकता होती है। उनमें से अधिकतर को वर्गीकृत या औपचारिक वैज्ञानिक नाम नहीं दिया गया है। प्रजाति की खोज और नामकरण की टैक्सोनोमिक प्रक्रिया लम्बी और जटिल होती हैं। वानस्पतिक वर्गीकरण विज्ञानी (टैक्सोनोमिस्ट) पौधों के नमूने को विभिन्न समूह में विभाजन करने से शुरू करते हैं, जो प्रजातियों के समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक बार नमूने को क्रमबद्ध करने के बाद यह देखा जाता है कि उनके पास पहले से ही नाम उपलब्ध हैं या नहीं। इसमें पहचान मार्गदर्शिकाओं (फ्लोरा) के माध्यम से काम करना, प्रजाति-प्रारूप अध्ययन, प्रारूप विवरण पढ़ना, और पादपालय में संरक्षित रखे पहले से पहचाने हुऐ नमूनों के साथ तुलना करने के लिए हर्बेरियम अध्ययन शामिल होता है। इस तरह की तुलना में बाह्य-आकारिकी विशेषताओं (मैक्रो-मोर्फोलॉजी) के साथ आंतरिक संरचनाओं (माइक्रो-मॉर्फोलॉजी), या डीएनए के आण्विक विश्लेषण को भी शामिल किया जा सकता है। यदि कोई मिलान नहीं है, तो माना जा सकता है की नमूने एक नई प्रजाति का प्रतिनिधित्व कर रहै हैं, तब टैक्सोनोमिस्ट को एक विवरण लिखना पड़ता है, जिसमें नई प्रजाति को दूसरों से अलग किया जाता है, और लैटिन प्रारूप में इसके लिए एक नाम बनाते हैं। नाम और विवरण को तब उचित रूप से प्रकाशित किया जाना होता है ताकि अन्य टैक्सोनोमिस्ट देख सकें कि क्या अध्यतन किया गया है, और प्रजातियों की पहचान करने में सक्षम हो। वर्गीकरण विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण चिंता यह है की मौजूदा विशेषज्ञ बढ़ती उम्र के साथ सेवानिवृत्त हो रहे है, वहीं युवा 'वर्गीकरण विज्ञान अध्ययन' का चुनाव नहीं कर रहे हैं, और इसलिए वर्गिकी वैज्ञानिक (टैक्सोनोमिस्ट),

विशेष रूप से फील्ड टैक्सोनोमिस्ट, की संख्या कम हो रही हैं। प्रजातियों की पहचान (या पहचान प्राप्त करने) की अक्षमता 'टैक्सोनोमिक बाधा' का एक प्रमुख कारण है। गैर-टैक्सोनोमिस्ट के लिए उपयोग में आसान पहचान मार्गदर्शिकाओं की कमी हैं, और अपेक्षाकृत कुछ ही टैक्सोनोमिक समूहों और भौगोलिक क्षेत्रों के लिए यह उपलब्ध हैं। टैक्सोनोमिक जानकारी अक्सर प्रारूपों और स्थानिक भाषाओं में होती है, जो अन्य देशों के वर्गीकरण वैज्ञानिकों के लिए उपयुक्त या सुलभ नहीं होती। विकासशील देशों के नमूने अक्सर औद्योगिक देशों के हर्बेरिया में संग्रहीत होते हैं। औद्योगिक देशों में संग्रह संस्थानों में इन विकासशील देशों के साथ-साथ संबंधित टैक्सोनोमिक जानकारी के अधिकांश नमूने भी हैं। लाखों प्रजातियां अभी भी अनदेखी हैं और जैव विविधता-समृद्ध लेकिन आर्थिक रूप से गरीब देशों में बहुत कम टैक्सोनोमिस्ट (वर्गीकरण विज्ञानी) हैं। इसके अलावा, हालांकि उच्च पौधों के समूहों पर व्यापक टैक्सोनोमिक काम है, लेकिन उनके वितरण, जीवविज्ञान और आनुवांशिकी के बारे में बहुत कुछ पता नहीं है।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'जैविक विविधता सम्मेलन (सीबीडी)' के निर्णयों को लागू करने के लिए पर्याप्त वर्गीकरण विज्ञानी/टैक्सोनोमिस्टों की कमी को एक महत्वपूर्ण बाधा के रूप में पहचाना है और बाधा को दूर या कम करने के लिए 'वैश्विक टैक्सोनोमिक पहल' विकसित की है। 'वैश्विक वर्गीकरण/टैक्सोनोमिक पहल' का उद्देश्य इस टैक्सोनोमिक बाधा को दूर या कम करना है। जीटीआई की स्थापना पार्टियों के सम्मेलन (सीओपी) ने दुनिया के कई हिस्सों में संबंधित टैक्सोनोमिक सूचना और विशेषज्ञता की कमी को संबोधित करने के लिए, सीओपी के निर्णयों के अनुसार सरकारों, गैर-सरकारी और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, साथ ही साथ और टैक्सोनोमिस्ट संस्थानों द्वारा कार्यान्वित करके की गयी है, जो जीटीआई विषयों को और विस्तार से कवर करता है। इतिहास में यह पहली बार है कि अंतर्राष्ट्रीय नीति में वर्गीकरण को इस तरह के उच्च स्तर पर मान्यता मिली है। 'वैश्विक वर्गीकरण पहल (जीटीआई)' के पांच मुख्य उद्देश्य है: वर्गीकरण विज्ञान की जरूरतों का मूल्यांकन (टैक्सोनॉमिक नीड असेसमेंट), 2 वर्गीकरण (जैव विविधता) जानकारी साझा करना (टैक्सोनॉमिक इन्फॉर्मेशन शेयरिंग), ३. प्रशिक्षण (ट्रेनिंग), ४. कोलैबोरेशन (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग), 5. जीटीआई - नेशनल फोकल पॉइंट्स (जीटीआई राष्ट्रीय केंद्र बिंदु).

'वैश्विक वर्गीकरण पहल (जीटीआई)' अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारों द्वारा जैवविविधता की खोज, आंकलन और प्रबंधन की गतिविधियों और उद्देश्यों के कार्यान्वयन के लिए मार्गदर्शक है। यह गतिविधियां मुद्दों को उजागर करती हैं, सूचना के आदान-प्रदान की सुविधा देती हैं, और तकनीकी सहयोग को बढ़ावा देती हैं। जीटीआई को लागू करने के लिए जिम्मेदार सरकारों और टैक्सोनोमिस्ट (गैर-सरकारी और अंतर्राष्ट्रीय) संगठनों को मार्गदर्शन प्रदान करता है। भाग लेने वाली सरकारें जीटीआई को उनकी जरूरतों और बेहतर प्राथमिकता लक्ष्य वाले क्षेत्रों के अनुकूल राष्ट्रीय प्राथमिकता प्रतिक्रिया प्रदान करती हैं। पार्टियों के सम्मेलन (सीओपी) ने 1998 में जीटीआई की स्थापना की। सीओपी ने समीक्षा बैठक में कुछ संशोधन किए और "वैश्विक वर्गीकरण पहल के कार्यक्रम की योजनाबद्ध गतिविधियों के परिणाम के लिए 'डिलिवरेबल्स" को शामिल किया गया। इसके तहत प्रत्येक गतिविधि के लिए लक्षित तिथि और सुझाए गए उद्देश्यों को इंगित करता है और पार्टियों से योजनाबद्ध गतिविधियों को पूरा करने का आग्रह किया जाता है। जीटीआई कार्यक्रम रणनीतियों, योजनाबद्ध गतिविधियों, विशिष्ट उद्देश्यों, अपेक्षित उत्पादों और संसाधनों की रूपरेखा तैयार कर स्थानीय, राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर सभी जैवविविधता हितधारकों के लिए एक गाइड (मार्गदर्शक) के रूप में कार्य करता है। सीओपी सम्मेलन की रणनीतिक योजना का कार्यान्वयन; स्पष्ट उद्देश्यों, तरीकों और साधनों के साथ परिचालन उद्देश्यों को (प्राथमिकताओं के आधार पर) निर्धारित करना, निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करना, तथा कार्यक्रम विस्तार जैसे कार्य इसमें शामिल है। जीटीआई कार्यक्रम में निम्नलिखित उद्देश्य, लक्ष्य और योजनाबद्ध गतिविधियां शामिल हैं:

उद्देश्य 1- सीओपी के निर्णय कार्यान्वयन के लिए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर टैक्सोनोमिक जरूरतों और क्षमताओं के आंकलन से संबंधित हैं, जिसमें वैश्विक, राष्ट्रीय, तथा क्षेत्रीय स्तर पर टैक्सोनोमिक प्राथमिकताओं का आकलन और पहचान तथा जन जागरूकता और शिक्षा जैसी नियोजित गतिविधियां शामिल हैं।

उद्देश्य 2 - टैक्सोनोमिक ज्ञान के आधार पर जैविक नमूने एकत्रित करने और संग्रहण के लिए आवश्यक मानव संसाधन, तंत्र और आधारभूत संरचना को बनाने और बनाए रखने में सहायता पर फोकस करता है। इसमें टैक्सोनोमिक सूचना तक पहुंच के लिए वैश्विक और क्षेत्रीय क्षमता निर्माण तथा वर्गीकरण में क्षेत्रीय सहयोग के लिए मौजूदा टैक्सोनोमिक नेटवर्क को सुदृढ़ बनाने जैसी योजनाबद्ध गतिविधियों को शामिल किया गया है।

उद्देश्य 3, 8 और 5 जैव विविधता के वैश्विक रजिस्टर की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। टैक्सोनोमिक (जैव विविधता संबंधित) जानकारी तक पहुंच के लिए एक बेहतर और प्रभावी आधारभूत संरचना प्रणाली की सुविधा निर्माण/सुनिश्चित करना; एक समन्वित वर्गीकरण सूचना प्रणाली का विकास; तथा जैव विविधता और उसके घटकों के संरक्षण और टिकाऊ उपयोग में निर्णय लेने के लिए आवश्यक जानकारी उत्पन्न करने के लिए महत्वपूर्ण टैक्सोनोमिक उद्देश्यों को इसमें शामिल किया गया है। इसकी योजनाबद्ध गतिविधियों में ज्ञात प्रजातियों की व्यापक रूप से सुलभ चेकलिस्ट (गतिविधि 8: वन जैविक विविधता, गतिविधि 9: समुद्री और तटीय जैविक विविधता, गतिविधि 10: शुष्क और उप-आर्द्र भूमि जैव विविधता, गतिविधि 11: अंतर्देशीय जल जैविक विविधता, गतिविधि 12: कृषि जैविक विविधता, गतिविधि 13: माउंटेन (पहाड़ी क्षेत्र) जैविक विविधता, गतिविधि 13 बी: द्वीप जैविक विविधता) बनाना शामिल है। उद्देश्य 5 की नियोजित गतिविधियां (14-18) जैव विविधता पहुंच और लाभ-साझाकरण (एक्सेस एंड बेनिफिट शेयरिंग), आक्रामक विदेशी प्रजातियां, पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव आकलन और निगरानी तथा जैव विविधता संरक्षित क्षेत्रों से संबंधित हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को सुविधाजनक बनाने और वैश्विक वर्गीकरण पहल के कार्यान्वयन और विकास से संबंधित मामलों पर गतिविधियों को समन्वित करने के लिए सीओपी द्वारा जीटीआई समन्वय तंत्र (समिति) की स्थापना की गई है। जैव विविधता पर सम्मेलन के साथ आयोजित जीटीआई बैठकों की रिपोर्ट लिंक जीटीआई- सीओपी वेबपृष्ठ पर उपलब्ध हैं। जीटीआई का कार्यान्वयन सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों, और उनके द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले संस्थानों सहित विभिन्न माध्यम (अकादमिक संस्थान, स्थानीय समुदाय तथा क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय सहयोग और नेटवर्क) से लागू किया जाता है। इसके महत्वपूर्ण भागीदार: आईपीबीईएस (जैव विविधता और परिस्थितिकी तंत्र पर अंतर-सरकारी विज्ञान-नीति प्लेटफार्म), जीईओ-बीओएन (पृथ्वी जैव विविधता अवलोकन-निरीक्षण नेटवर्क समूह), एफएओ (संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन), यूएनईपी-डब्ल्यूसीएमसी (संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम - विश्व संरक्षण निगरानी केंद्र और इसकी बायोजेनेसिस परियोजनाएं), आईएपीटी (अंतर्राष्ट्रीय वनस्पतिक वर्गीकरण वैज्ञानिक संगठन), आईयूसीएन (प्रकृति संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ), सीआईटीईएस (वन्य जीव और वनस्पति की लुप्तप्राय प्रजातियों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सम्मेलन), सीएमएस (प्रवासी प्रजातियों पर सम्मेलन), आईटीपीजीआर (कृषि के लिए संयंत्र आनुवंशिक संसाधनों के लिए अंतर्राष्ट्रीय संधि), बीजीसीआई (बॉटनिक गार्डन (वनस्पति उद्यान) अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण सहयोग), सीबीओएल (बारकोड ऑफ लाइफ कंसोर्टियम), ईओएल (जीवन विश्वकोष), ईएसएफआरआई (रिसर्च इंफ्रास्ट्रक्चर के लिए यूरोपीय रणनीति फोरम), जीबीआईएफ (वैश्विक जैव विविधता सूचना सुविधा), जीबीआरसीएन (वैश्विक जैविक संसाधन केंद्र नेटवर्क), आईबीओएल (बारकोड ऑफ लाइफ अंतर्राष्ट्रीय परियोजना और सहयोग संगठन), अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान संग्रह, डब्ल्यूएफसीसी (संस्कृति संग्रह विश्व संघ), बायोनेट इंटरनेशनल - वर्गीकरण के लिए वैश्विक नेटवर्क, तथा अन्य प्रासंगिक संगठनों और पहलुओं के बारे में जानकारी पोर्टल के संबंधित लिंक वेबपृष्ठ पर सूचीबद्ध है।

वैश्विक वर्गीकरण पहल (जीटीआई) के तहत सीओपी के मार्गदर्शन में कई सरकारों द्वारा नेशनल फोकल पॉइंट्स (राष्ट्रीय केंद्र बिंदु) नामित किए गए हैं। जिन सरकारों ने जीटीआई नेशनल फोकल पॉइंट्स को नामित नहीं किया है, उनको सीओपी ने फिर से आग्रह किया है और उनके लिए डिफॉल्ट कन्वेंशन पॉइंट्स उपलब्ध है। जीटीआई नेशनल फोकल पॉइंट्स का उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर जीटीआई के कार्यान्वयन को आगे बढ़ाने के लिए संपर्कों का विकास और सूचना विनिमय को सुविधाजनक बनाना है। जीटीआई से संबंधित सचिवालय उप-क्षेत्रीय, क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर कार्यान्वयन की सुविधा के लिए संवाद और सहयोग प्रदान करता हैं। जीटीआई के कार्यान्वयन में सरकारों द्वारा की गई प्रगति के राष्ट्रीय दस्तावेज और जीटीआई थीमैटिक रिपोर्ट वेबपृष्ठ के माध्यम से प्रकाशित की जाती है। इन रिपोर्टों को रिपोर्ट-विश्लेषक का उपयोग कर वेबपृष्ठ पर देखा जा सकता हैं। जीटीआई से संबंधित सीओपी और एसबीएसटीटीए बैठकों (मीटिंग्स) से तैयार या पुनर्वितरण के ऐतिहासिक दस्तावेज के लिंक वेबपृष्ठ दस्तावेजों पर पाए जा सकते हैं। निम्नलिखित दस्तावेजों की सूची जैविक विविधता सम्मेलन (सीबीडी) के माध्यम से उपलब्ध कराई गई है। बाहरी स्रोतों से कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन भी इसमें शामिल हैं, जिन्हें वैश्विक वर्गीकरण पहल (जीटीआई) का समर्थन करने के लिए डिजाइन किया गया है। इसमे कुछ प्रमुख है वैश्विक वर्गीकरण पहल की मार्गदर्शिका और व्यापक जानकारी, लिनियस व्याख्यान श्रृंखला पुस्तिका, यूएनईपी-सीबीडी में वैश्विक वर्गीकरण पहल में शामिल प्रस्तुतियां और जानकारी; जीटीआई प्रपत्र (अंग्रेजी, फ्रेंच और स्पेनिश में उपलब्ध), यूएनईपी-सीबीडी (वर्गीकरण क्षमता निर्माण व्यावहारिक दृष्टिकोण; वैश्विक वर्गीकरण पहल और प्रगति), वैश्विक वर्गीकरण पहल के लिए ड्राफ्ट गाइड; जीटीआई विकास और कार्य के कार्यक्रम की गहन समीक्षा और नए कार्यक्रमों के लिए योजनाबद्ध गतिविधियों के लिए दिशानिर्देश; जीटीआई कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की प्रगति रिपोर्ट; जीईएफ कार्यशाला, वैश्विक प्रमुख प्रजातियों के समूहों के वर्तमान ज्ञान (स्थिति) मूल्यांकन रिपोर्ट; वर्तमान टैक्सोनोमिक सिस्टम पर पारंपरिक और स्वदेशी ज्ञान के विचार के साथ जीटीआई के प्रबंधन तंत्र; वैज्ञानिकों की क्षेत्रीय बैठक और कार्यशाला की प्रगति रिपोर्ट और जीटीआई कार्यक्रमों के कार्यान्वयन सफलता की रिपोर्ट, जो की वेबपृष्ठ पर उपलब्ध हैं। जैव विविधता से संबंधित गतिविधियों के लिए वित्त पोषण का

सबसे महत्वपूर्ण एकल स्रोत सम्मेलन (सीओपी), वैश्विक पर्यावरण सुविधा (जीईएफ) का वित्तीय तंत्र है। जीईएफ कई तरीकों से जीटीआई के कार्यान्वयन का समर्थन करता है। जीईएफ के टैक्सोनोमिक/ वैश्विक वर्गीकरण पहल (जीटीआई)-संबंधित गतिविधियों के वित्त पोषण के बारे में विस्तृत जानकारी जीटीआई गाइड (अध्याय 5) वेबपृष्ठ पर उपलब्ध हैं। सीओपी ने वैश्विक वर्गीकरण पहल के लिए विशेष निधि (जीटीआई स्पेशल फंड) स्थापित करने के लिए बायोनेट इंटरनेशनल और अन्य प्रासंगिक संगठनों को एकत्रित किया हैं। डार्विन पहल (यूके), बेल्जियम वर्गीकरण विकास सहयोग, कैलिफ़ोर्निया एकेडमी ऑफ साइंसेज, यूरोपीय सहयोग समर्थन, लिनेयन सोसाइटी और सिस्टमैटिक्स एसोसिएशन की परिषदों द्वारा समर्थित सिस्टमैटिक्स रिसर्च फंड जीटीआई के वित्त पोषण और अवसरों के अन्य स्रोतों में शामिल हैं।

जैव विविधता की संपूर्ण जानकारी के लिए जैव विविधता डाटा बेस महत्वपूर्ण होते है। वैश्विक वर्गीकरण संबंधित निम्नलिखित डेटाबेस जीटीआई वेबपृष्ठ पर टैक्सोनोमिक विशेषज्ञता लिंक प्रदान करते हैं। टैक्सोनोमिक पहचान के लिए विशेषज्ञ केंद्र के विश्व टैक्सोनोमिस्ट डेटाबेस, विशेषज्ञों के जैविक विविधता (सीबीडी) रोस्टर, प्रशांत क्षेत्र एंटोमोलॉजिस्ट निर्देशिका, टैक्सोनोमिक रिसोर्सेज एंड एक्सपेरिज डायरेक्टरी (टीआरईडी) (उत्तरी अमेरिका के बायोटा के लिए टैक्सोनोमिक विशेषज्ञों की एक निर्देशिका,) प्राकृतिक विज्ञान संग्रह गठबंधन (एनएससीए और यूएसजीएस जैविक संसाधन प्रभाग (बीआरडी) के बीच साझेदारी के माध्यम से विकसित), राष्ट्रीय जैविक सूचना बुनियादी ढांचे (एनबीआईआई) और एकीकृत टैक्सोनोमिक सूचना प्रणाली (आईटीआईएस), यूरोप (एफएईयू) जीव विशेषज्ञ डेटाबेस, यूके टैक्सोनोमिक विशेषज्ञता रजिस्टर, वैश्विक एंटोमोलॉजिस्ट सूची, एशियन टैक्सोनोमिस्ट की निर्देशिका, हिंद महासागर टैक्सोनोमिस्ट का डाटाबेस (बीटल्स के अध्ययन के लिए समर्पित), विश्व डिप्टरिस्ट सिस्टमैटिस्ट्स, इंडेक्स हर्बेरिओरम (सार्वजनिक हर्बेरिया और संबंधित कर्मचारियों की वैश्विक निर्देशिका), आईयूसीएन प्रजाति उत्तरजीविता आयोग (लगभग 7,000 विशेषज्ञों का विज्ञान आधारित नेटवर्क), लाइकेनोलॉजिस्ट डायरेक्टरी (अंतर्राष्ट्रीय लाइकेनोलॉजिस्ट संघ), अमेरिकन सोसायटी ऑफ प्लांट टैक्सोनोमिस्ट्स, कनाडा के सिस्टमैटिस्ट्स की सूची, लुप्तप्राय प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सम्मेलन (सीआईटीईएस) समिति, आयोवा राज्य एंटोमोलॉजी इंडेक्स और इलेक्ट्रॉनिक जैव विविधता डेटा (एसएमईबीडी) प्रबंधन सोसाइटी। इसमें ईएसबीबीआई (पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के लिए वर्गीकरण प्रशिक्षण नियमावली और प्रजाति पहचान पत्रक), बायोनेट (पूर्वी अफ्रीका के लिए आक्रामक विदेशी प्रजातियों के लिए पहचान कुंजी और तथ्यपत्रियां बायोनेट - ईएफ्रिनेट द्वारा प्रकाशित), खोज जीवन (प्राकृतिक इतिहास का अध्ययन करने और जलवायु परिवर्तन, आक्रामक प्रजातियों, और अन्य बड़े पैमाने पर पारिस्थितिक कारकों के प्रभाव को ट्रैक करने के लिए उपकरण), जीवन विश्वकोश (पृथ्वी पर जीवन के बारे में ज्ञान), बॉटनिकल गार्डन (वनस्पति उद्यान) डेटाबेस, ऑनलाइन टैक्सोनोमिक पहचान कुंजी एप्लीकेशन, स्वीडिश प्रजाति गेटवे, समुद्री जीवों के लिए आईडी गाइड (समुद्री जीवन सूचना नेटवर्क) जैसे टैक्सोनोमिक टूल्स जैसे महत्वपूर्ण विशेषज्ञता लिंक इसमें सूचीबद्ध हैं।

'वैश्विक वर्गीकरण पहल' के तहत प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है। आक्रामक विदेशी प्रजातियों की रैपिड पहचान (आईची जैवविविधता लक्ष्य 9) और जैव विविधता डीएनए बारकोडिंग तकनीक और पद्धतियों पर 2015 में प्रशिक्षण आयोजित किया गया था। जीटीआई क्षमता निर्माण रणनीति के तहत विकासशील देशों को सशक्त डीएनए-आधारित दृष्टिकोण (डीएनए बारकोडिंग) का उपयोग करके आक्रामक विदेशी प्रजातियों की पहचान करने के लिए ऑनलाइन प्रशिक्षण के साथ अंतरराष्ट्रीय 'बारकोड ऑफ लाइफ कॉन्फ्रेंस' के माध्यम से उन्हें डीएनए बारकोडिंग अंतरराष्ट्रीय सहयोगी नेटवर्क में शामिल होने का अवसर भी प्रदान किया गया। 2016 में जीटीआई प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का दूसरा दौर लॉन्च किया गया हैं, एक्सेस एंड बेनिफिट शेयरिंग (जैव विविधता उपयोग से उत्पन्न लाभों के उचित और न्यायसंगत साझाकरण), जेनेटिक रिसोर्सेज के अंतरराष्ट्रीय हस्तांतरण, डेटा शेयरिंग और बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित अंतरराष्ट्रीय समझौते आनुवंशिक संसाधनों तक पहुंच पर सीबीडी नागोया प्रोटोकॉल के प्रावधानों और कार्यान्वयन की प्रतिभागियों द्वारा समझ को बढ़ाना, इस प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं। अतः वनस्पति जगत से जुड़े हम सभी को 'वैश्विक वर्गीकरण पहल - जीटीआई' से जुड़ते हुए वनस्पति वर्गीकरण विज्ञानं को उसके स्वर्णिम युग तक पहुंचने एवम इस विज्ञानं को सरल समझ के साथ जन जन तक पहुंचने के लिए अपना सहकार्य देने की नितांत आवश्यकता है।

प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय और जैव विविधता

मानस भौमिक एवं सुरेन्द्र कुमार शर्मा*

***भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा**
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

अंग्रेजी शब्द "म्यूजियम" की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द " "माउसियन" से हुई है, जो एक स्थान या मंदिर को दर्शाता है जो कि "मूसेस" (ग्रीक पौराणिक कथाओं में कला के लिए संरक्षक देवताओं) के लिए समर्पित है, इसलिए इस भवन को अध्ययन और कला के लिए चिन्हित किया गया है, विशेष रूप से दर्शन और अनुसंधान के लिए मुसईम (संस्थान)।

संग्रहालय एक ऐसी संस्था है जो कलात्मक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक या वैज्ञानिक महत्व की कलाकृतियों और अन्य वस्तुओं के संग्रह की देखभाल या संरक्षण करती है। सार्वजनिक संग्रहालय इन वस्तुओं को स्थायी या अस्थायी प्रदर्शनी के माध्यम से सार्वजनिक रूप से देखने के लिए उपलब्ध कराते हैं। कई बड़े संग्रहालय दुनिया के प्रमुख शहरों में स्थित हैं, जबकि हजारों स्थानीय संग्रहालय छोटे शहरों, कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद हैं। संग्रहालयों के अलग-अलग उद्देश्य होते हैं, जिनमें शोधकर्ताओं और विशेषज्ञों की सेवा से लेकर आम जनता की सेवा करना शामिल होता है।

प्रारंभ में संग्रहालय अमीर व्यक्तियों, परिवारों तथा संस्थाओं द्वारा कलात्मक, दुर्लभ या अद्भुत प्राकृतिक वस्तुओं और कलाकृतियों के निजी संग्रह के रूप में शुरू हुए। इन्हें अक्सर तथाकथित आश्चर्य वाले कमरे या जिज्ञासा की अलमारी के रूप प्रदर्शित किया जाता था। सबसे पुराने संग्रहालयों में से एक एन्निगाल्डी-नन्ना का संग्रहालय है, जो नव-बेबीलोनियन साम्राज्य के अंत में राजकुमारी एन्निगाल्डी द्वारा बनाया गया था।

इन संग्रहालयों का सार्वजनिक उपयोग अक्सर "प्रतिष्ठित व्यक्तियों" के लिए ही संभव था। विशेष रूप से निजी कला संग्रह के लिए, उसके मालिक और कर्मचारियों की इच्छा पर निर्भर होता था। इस समय के दौरान कुलीन पुरुषों ने इन अद्भुत वस्तुओं का संग्रह और उनका प्रदर्शन करके कुलीन वर्ग की दुनिया में एक उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त की। इन संग्रहों में से कई वस्तुएं उन संग्रहकर्ताओं या प्रकृतिवादियों द्वारा नई खोजी गई, जो लोग प्राकृतिक विज्ञान में रुचि रखते थे,और उन्हें प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। इन संग्रहित वस्तुओं को प्रदर्शित करके उन्हें न केवल अपना शानदार प्रदर्शन दिखाने को मिला, बल्कि उन्होंने संग्रहालय का उपयोग प्राचीन ग्रंथों के व्यापक प्रसार, खोजी यात्राओं, और सूचनाओं को अधिक व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करने में किया।

संग्रहालय कई प्रकार के होते हैं, जिनमें कला संग्रहालय, प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय, विज्ञान संग्रहालय, युद्ध संग्रहालय, खेल संग्रहालय और बच्चों के संग्रहालय शामिल हैं। दुनिया के सबसे बड़े और सबसे अधिक देखे जाने वाले संग्रहालयों में, पेरिस में लौवर, बीजिंग में नेशनल म्यूजियम ऑफ़ चीन, वाशिंगटन डीसी में स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन, लंदन में ब्रिटिश म्यूजियम और नेशनल गैलरी, न्यूयॉर्क सिटी में मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट और वेटिकन सिटी में वेटिकन सिटी म्यूजियम है।

आधुनिक संग्रहालयों का उद्देश्य जनसामान्य को शिक्षित और मनोरंजन करने के लिए कलात्मक, सांस्कृतिक या वैज्ञानिक महत्व की वस्तुओं का संग्रह, परीरक्षण, व्याख्या और प्रदर्शन करना होता है। संग्रहालय के लिए किसी दर्शक या समुदाय का उद्देश्य उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। संग्रहालय ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ भंडार होते हैं। एक स्थानीय इतिहास संग्रहालय या शहर के बड़े कला संग्रहालय की यात्रा समय का सदुपयोग करने का मनोरंजक और ज्ञानवर्धक तरीका हो सकता है।

प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय, प्राकृतिक इतिहास संग्रह के साथ एक वैज्ञानिक संस्था है। जिसमें प्राणियों, पौंधो, कवकों, पारिस्थितिकी तंत्र, भू-विज्ञान, जीवाश्म विज्ञान, जलवायु विज्ञान से संबधित ऐतिहासिक और वर्तमान अभिलेख तथा नमूने शामिल होते हैं। प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय का प्राथमिक कार्य वैज्ञानिक समुदाय को अनुसंधान के लिए ऐतिहासिक और वर्तमान नमूनों को उपलब्ध करवाना हैं। ये नमूने वैश्विक रचना, पहचान, स्थानिक वितरण, पारिस्थितिकी, और ज्ञात जीवन के इतिहास का दस्तावेज प्रस्तुत करते हैं। तथा विकासवादी और पारिस्थितिक घटना के स्वरूप, प्रक्रियाओं और कारणों का खुलासा करने के लिए आधारभूत अनुसंधान सामग्री प्रदान करते हैं। प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय - जीवित जीवों, उनके आवास और जीनो की खोजो का लिपिबद्ध संग्रह हैं - जो इस जानकारी को जनता, सरकार और उद्योगो को प्रदान करते हैं। इसके अंतर्गत जीवो की प्रजातियो को एकत्रित करना, उनकी पहचान करना, पहले से ज्ञात

भारतीय संग्रहालय, कोलकाता स्थित भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की वानस्पतिक गैलरी में जानकारी प्राप्त करते विभिन्न आयु वर्ग और स्कूलों के छात्र-छात्राएं

और अज्ञात प्रजातियों का वर्णन करना और उनके विकासवादी सिद्धांत का अध्ययन करना हैं, और भविष्य के अनुसंधान के लिए संदर्भ संग्रह बनाए रखना भी शामिल है। दुनिया में अधिकांश प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय केवल जीवो से संबंधित हैं, जबकि कुछ संग्रहालय पौधों (वनस्पतियों) से भी संबंधित हैं।

जैव विविधता- किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में पाए जाने वाले जीवों की संख्या और उनकी विविधता को कहते हैं। जैव विविधता को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है। अनुवांशिक जैव विविधता , प्रजातीय जैव विविधता, पारितंत्रीय जैव विविधता। हालांकि इस शब्द का उपयोग अक्सर बायोप्रोस्पेक्टिंग के साथ संक्षिप्त में पौधों और प्राणियों से आनुवंशिक और जैव रासायनिक संसाधनों की खोज और उनके उपयोग के लिए किया जाता है। यह माना जाता है कि दुनिया भर में जैव विविधता घट रही है। और यह भी माना जाता है कि एक मजबूत जैव विविधता बनाये रखने के लिए, जैव विविधता और पर्यावरण का प्रबंधन करना आवश्यक होगा। संग्रहालय, जो हमारी जैव विविधता की पहचान और लिपिबद्ध संग्रह प्रदान करते हैं, इनकी जैव विविधता के प्रबंधन में प्रमुख भूमिका है।

संग्रहालय पारंपरिक रूप से व्यापक वर्गीकरण और व्यवस्थित अनुसंधान गतिविधियों का संचालन करते हैं, जो पर्यावरण और विकास को समझने के लिए आवश्यक हैं। संग्रहालयों में अधिकांश जैविक अनुसंधान आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियों के प्रलेखन पर केंद्रित हैं। यह अनुसंधान के क्षेत्र में अद्वितीय जीवों के विकास और बेहतर संरक्षण के लिए हमारी समझ को विकसित करने में मदद करता है। इसमें नई प्रजातियों के विवरण शामिल होते हैं और प्रदर्शो के वर्गीकरण का व्यापक संशोधन होता।

प्राकृतिक इतिहास संग्रह, प्राथमिक (अल्फा) विविधता की पहचान के लिए मूल्यवान शिक्षण उपकरण के रूप में कार्य करते हैं, जो स्थानीय वैज्ञानिकों को आकर्षित करने के लिए कच्चा माल प्रदान करने स्वरुप है। प्राचीन डीएनए संसाधन (हर्बेरियम, संरक्षित ऊतक) विलुप्त प्रजातियों की जनसंख्या की गतिशीलता और टैक्सोनोमिक स्थिति या विलुप्त प्रजातियों के पुर्नवितरण के बारे में जानकारी प्रदान कर सकते हैं। आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियों के संरक्षण पर, विशेष रूप भोजन और दवा प्रदान करने वाली प्रजातियों का, ध्यान दिया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्राकृतिक इतिहास संग्रहालयों का उद्देश्य अनुसंधान और प्रदर्शन के लिए ज्ञात प्रत्येक वर्ग के उदाहरणों का संग्रह करना था। उन्नीसवीं शताब्दी में अमेरिकी कॉलेज बढ़ने के साथ, उन्होंने अपने छात्रों के उपयोग के लिए अपने स्वयं के प्राकृतिक इतिहास संग्रह विकसित किए। उन्नीसवीं शताब्दी की अंतिम तिमाही तक, विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक अनुसंधान एक कोशिकीय स्तर पर जैविक अनुसंधान की ओर बढ़ रहे थे, और अत्याधुनिक अनुसंधान के फलस्वरूप संग्रहालय, विश्वविद्यालय की प्रयोगशालाओं में स्थानांतरित हो गए। जबकि कई बड़े संग्रहालयों को अनुसंधान केंद्र के रूप में माना जाता है, भविष्य की पीढ़ियों के लिए कलाकृतियों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए संग्रहालयों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संग्रहालय ऐसी वस्तुओं को प्रदर्शित करते हैं जो एक संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण होती हैं। संग्रहालयों में प्राचीन दस्तावेजों, कलाकृतियों, और इमारतों के संरक्षण के लिए बहुत अधिक देखभाल, विशेषज्ञता और धन का व्यय किया जाता है। हाल के वर्षों में, कुछ शहरों ने आर्थिक विकास या कायाकल्प के लिए राजस्व के रूप में संग्रहालयों की ओर रुख किया है। संग्रहालय शहर और स्थानीय सरकारों द्वारा सांस्कृतिक और आर्थिक चालक के रूप में इस्तेमाल किए जा रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी के लिए सबसे बड़ी चुनौती पृथ्वी की जैविक विविधता के बारे में ज्ञान प्राप्त करना है, जिस पर सभी का जीवन निर्भर करता है। यह ज्ञान, विज्ञान और समाज के लिए महत्वपूर्ण है - प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए, मानव स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए, आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए, और मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए। इस ज्ञान की तत्काल आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है क्योंकि मानव-प्रबंधित प्रणालियों में प्राकृतिक प्रणालियों का रूपांतरण जैविक विविधता की गिरावट को तेज करता है। पृथ्वी के पर्यावरण प्रबंधन को सूचित करने के लिए प्राकृतिक इतिहास संग्रहालयों को तैयार किया जाना चाहिए। प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय एक महत्वपूर्ण मोड़ पर हैं। अब वे जैव विविधता की समझ, संरक्षण और स्थायी उपयोग की दिशा में अनुसंधान के विकास में एक केंद्रीय और महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

एकल स्थानिक एवं संकटग्रस्त प्रजाति *ट्राइकोलेपिस रोयली* का ऊतक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षण

गिरिराज सिंह पंवार, भावना जोशी एवं आकृति भंडारी

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

ट्राइकोलेपिस कुल ऐस्टरेसी या कम्पोजिटी का एक महत्वपूर्ण वंश है, जिसकी विश्व भर में अठारह जातियां हैं, जिनमें से लगभग पंद्रह जातियां भारत में पायी जाती है। कुल ऐस्टरेसी या कम्पोजिटी को भाषा में तारक डेजी, मिश्रित या सूरजमुखी परिवार के नाम से भी जाना जाता है। ऐस्टरेसी नाम प्राचीन ग्रीक शब्द से लिया गया है, जो कि इस कुल के पुष्पक्रम की आकृति पर अधारित है। जातियों की संख्या के लिहाज से यह परिवार पूरे एन्जियोस्पर्म का सबसे बड़ा और व्यापक परिवार है। इस परिवार की विश्व भर में 16000 से अधिक वंश तथा 23000 जातियां पायी जाती हैं। जिसमें से वंश लगभग 193 तथा 1172 जातियां भारत में पायी जाती हैं।

यह वंश अफगानिस्तान, भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, म्यांमार, थाईलैंड, ईरान और तजाकिस्तान में पाया जाता है। *ट्राइकोलेपिस रोयली* इस वंश की एक अति महत्वपूर्ण जाति है, जो भारत और तिब्बत के अलावा अभी कहीं और से सूचित नहीं की गई हैं। भारत में यह उत्तर पश्चिमी हिमालय में पायी जाती है और यहीं की यह स्थानिक निवासी है। पहाड़ी ढलानों पर इसका निवास स्थल है परन्तु लगातार इसके प्राकृतिक आवास में कटाव होने के कारण यह जाति खतरे की जद में आ गयी है और इसी कारण यह प्रजाति हिमालय क्षेत्र की एक दुर्लभ प्रजाति के रूप में अंकित हो गयी है।

प्लेट (क): *ट्राइकोलेपिस रोयली* की विभिन्न ऋतुजैविक अवस्थाः 1. पादप 2. खड़ी चट्टानों पर वास, 3. पुष्प 4. परिपक्व बीज।

भौगोलिक वितरण

ट्राइकोलेपिस रोयली भारत तथा तिब्बत में पायी जाती है और यह मुख्यतः हिमालय की निवासी है। यह जाति पश्चिम हिमालय की पहाड़ियों के ढ़लान पर समुद्रतल से 1447-3600 मीटर की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पायी जाती है। भारत में यह जाति हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिले के सांगडा नामक स्थान के आस पास पायी जाती है। हिमाचल प्रदेश के अतिरिक्त अभी तक कहीं भी इसकी प्राप्ति के कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इसलिये शोधकर्ताओं को इस जाति के स्थानिक स्वभाव पर कार्य करने की विशेष आवश्यकता है।

संभावित खतरे

पर्वतीय क्षेत्रों में हर तरफ सड़कों का जाल, पुरानी मुख्य सड़कों का चौड़ीकरण, खनन एवं भूस्खलन के कारण इस जाति के प्राकृतिक आवास में तीव्र गति से क्षति हो रही है और ट्राइकोलेपिस रोयली जो कि एक ही स्थान पर सड़कों के किनारे उपस्थित है, ऐसी जाति को संरक्षित कर पाना एक चिन्ताजनक स्थिति है। चूंकि *ट्राइकोलेपिस रोयली* पहाड़ी ढलानों पर समुद्रतल से 1447-3600 मीटर की ऊंचाई वाले क्षेत्रों पर पायी जाती है। इन क्षेत्रों में लगातार होते प्राकृतिक दोहनों के कारण इस जाति के अस्तित्व पर संकट गहरा रहा हैं। इन सब कारणों से आज यह जाति एक दुर्लभ जाति के रूप में अंकित हो गयी है। अधिकांश दुर्लभ एवं संकटग्रस्त जातियां मात्र अपने विशिष्ट स्थल में ही पाई जाती हैं, जहां उन्हें अनुकूल वातावरण मिल सके तथा उनका प्राकृतिक रूप से संवर्धन हो सके।

सक्रिय संघटक एवं औषधीय उपयोग

ट्राइकोलेपिस की विभिन्न जातियां भिन्न-भिन्न सक्रिय संघटकों से परिपूर्ण हैं जिनमें ट्राइकोलेपिस ग्लैबरीमा में स्टीरौल (स्पीनैस्टीरौल, स्टिग्मास्टीरौल, स्टिग्मैस्ट-7-इनौल), टरपीनोइड (बेटुलिन) आदि उपस्थित हैं तथा एंटी आक्सीडेंट, एवं कामोत्तेजक गुण पाये जाते हैं। इसी तरह ट्राइकोलेपिस प्रोकमबेन्स में प्रोकमबेनीडीन-ए तथा ग्लूकोज पाया जाता है। प्रत्यक्ष रूप से ट्राइकोलेपिस रोयली का पारंपरिक औषधियों में कोई उल्लेख नहीं है और ना ही इस पर कोइ ठोस कार्य हुआ है, किन्तु इसकी अन्य जातियों के औषधीय गुणों को ध्यान में रखते हुए इसके सक्रिय संघटकों का पता लगाना अति आवश्यक है।

ट्राइकोलेपिस रोयली की विभिन्न ऋतुजैविक (Phenological) अवस्थायें

ट्राइकोलेपिस रोयली हिमालयी क्षेत्रों की एक एकवर्षीय जाति है। यह जाति हर साल अगस्त से दिस्मबर तक अपना जीवन चक्र (पुष्पन, बीज निर्माण एवं बीजों का अंकुरण) पूरा करती है। जुलाई माह में वर्षा के पश्चात गिरे हुए बीज अंकुरित हो कर विकसित होने लगते हैं। सितम्बर माह के आरम्भ से ही पुष्प खिलने प्रारम्भ हो जाते हैं और नवम्बर माह तक खिलते रहते हैं और साथ ही साथ बीजों का विकास आरम्भ हो जाता है तथा नवंबर - दिसंबर तक पूर्ण रूप से विकसित बीज बिखराव के लिये तैयार हो जाते हैं। पूर्ण रूप से विकसित बीज हवा के झोके से मातृ पौधे से अलग होकर आस पास की जमीन पर बिखर जाते हैं। ट्राइकोलेपिस रोयली के बीज बहुत ही छोटे आकार के होते हैं और इनके एक शिरे पर महीन रोयें का पुंज होता है जो कि बीजों को बिखरने में सहायता करता है। बीजों का आकार छोटा होने के कारण इनमें संचित खाद्यय पदार्थों की मात्रा कम होने के कारण इन्हें मातृ पौधे से अलग होने के उपरान्त शीघ्र अंकुरित हो कर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से अपने खाद्य पदार्थों का निर्माण करना होता है। खड़ी चट्टानों एवं सड़कों पर बिखरने के पश्चात ये बीज बरसात के तुरन्त बाद जमने शुरू हो जाते हैं। यह देखा गया है कि पूरे बिखरे हुए बीजों में से 1 से 2 प्रतिशत बीज ही अंकुरित हो पाते हैं।

बीजों का अंकुरण

जैसा कि पूर्व में प्रकाशित साहित्य से पता चला है कि जाति का प्राकृतिक वास सड़कों के किनारे पथरीली चट्टानों पर होने के कारण 1-2 प्रतिशत बीज ही अंकुरित हो पाते हैं और प्राकृतिक वास पथरीली चटटानों पर होने के कारण अंकुरित बीजों का उत्तरजीविता (Survival) प्रतिशत और भी कम हो जाता है। बीजों के प्रचुर मात्रा में अंकुरित न हो पाने, आवासीय विघटन एवं अन्य मानव जनित कारकों की वजह से यह जाति प्रकृति में विलुप्त हो रही है। इसकी पुष्टि हेतु इसके बीजों को प्राकृतिक एवं नियंत्रित वातावरण में अंकुरित कराया गया और अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि इस जाति के बीज नियंत्रित वातावरण में भी काफी कम अंकुरित हो रहे हैं।

ट्राइकोलेपिस रोयली का पादप ऊतक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षण

ट्राइकोलेपिस रोयली की प्रकृति में घटती हुई संख्या, इस पर मंडराते हुऐ खतरों एवं इसके स्थानीय एवं संकटापन्न स्थिति को ध्यान में

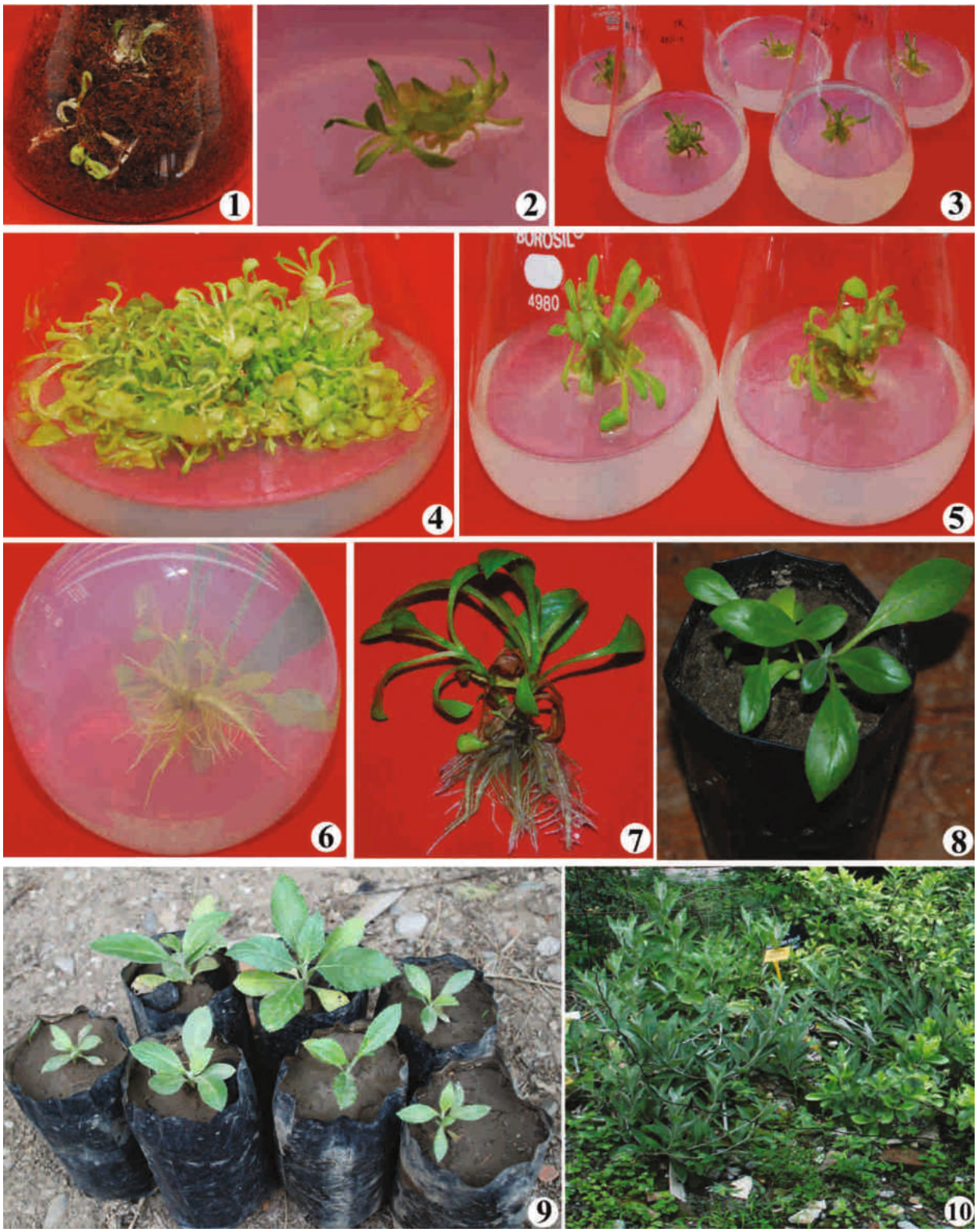

प्लेट (ख): *ट्राइकोलेपिस रोयली* का पादप ऊतक संवर्धनः 1. बीजों का अंकुरण; 2 – 4. तनों के शीर्ष भाग से नये तनों का सूत्रपात (Initiation); 5. एव 6. जड़ों का विकास एवं प्रसारण; 7. पूर्ण विकसित जड़े; 8. पौधों का संवर्धन गृह में अनुकूलन; 9. पौधों का हरित गृह में अनुकूलन; 10. अनुकूलित पौधों का खुले वातावरण में स्थानान्तरण।

रखते हुए इस जाति को पादप ऊतक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षित करके प्रकृति में इसके अस्तित्व को बचाये रखने का प्रयास किया गया है। ट्राइकोलेपिस रोयली के ऊतक संवर्धन विधि की विभिन्न अवस्थायें निम्नलिखित हैं (प्लेट-ख)।

तना प्रेरण (Shoot Induction): *ट्राइकोलेपिस रोयली* के बीजों से अंकुरित पौधों से पूर्ण विकसित तनों के शीर्ष (Shoot Tip) एवं पर्णसंधि (Nodal Segment) भाग को बी. ए. पी. एवं एन. ए. ए. युक्त पादप वृद्धि नियंत्रकों से संपूरित एम. एस. माध्यम में प्रतिस्थापित कर तनों को प्रेरित किया जाता है। प्रतिस्थापित करने के करीब एक सप्ताह बाद अंकुरण के शीर्ष भाग से ट्राइकोलेपिस रोयली के तनों का विकास प्रारम्भ हो जाता है। विकसित तनों को 15 से 20 दिनों के बाद उपसंवर्धित किया जाता है और अन्त में करीब 40 से 50 पूर्ण विकसित तने प्राप्त होते हैं। (प्लेट-ख, 4)

मूल प्रेरण (Root Induction)

ऊतक संवर्धन विधि द्वारा विकसित *ट्राइकोलेपिस रोयली* के तनों को जड़ों के विकास हेतु मूल प्रेरण माध्यम में प्रतिस्थापित किया जाता है। मूल प्रेरण माध्यम विभिन्न ऑक्जिन जैसे आइ. बी. ए., आइ. ए. ए. एवं एन. ए. ए. की विभिन्न सान्द्रताओं से संपूरित किये गये विभिन्न लवण युक्त एम. एस. पोषक माध्यम (पूर्ण, अर्द्ध एवं चैथाई मात्रा) में पूर्ण विकसित तनों को प्रतिस्थापित किया जाता है। पूर्ण विकसित तनों को प्रतिस्थापित करने के 7-14 दिन पश्चात अर्द्ध लवण युक्त एम. एस. पोषक माध्यम में तने के निचले सिरे से जड़े निकलनी प्रारम्भ हो जाती है और करीब एक माह में पूर्ण विकसित जड़े प्राप्त हो जाती हैं। (प्लेट-ख, 6)

ऊतक संवर्धन विधि द्वारा विकसित पौधों का पारिस्थितिकी अनुकूलन

पूर्ण रुप से विकसित *ट्राइकोलेपिस रोयली* के पौधों को संवर्धन नलिका से बाहर निकालकर पहले भली-भॉति धुल लेते हैं और उसके उपरान्त उन्हें जीवाणु रहित वर्मीकुलाइट एवं मृदा से भरे गमलों में स्थानान्तरित किया जाता है। इन गमलों मे प्रारंभ में आर्द्रता बनाये रखने के लिए एक सप्ताह तक पॉलीथीन से ढक कर रखते हैं। एक माह पश्चात इन पौधों को मृदा से भरे गमलों में हरित गृह में स्थानान्तरित किया जाता है। हौगलैण्ड विलयन की 1:10 सान्द्रता के घोल वाला पानी पौधों को हर तीन दिन बाद दिया जाता हैं। धीरे-धीरे यह पौधे हरित गृह के वातावरण में अपने आप को ढाल लेते हैं और अन्ततः इन पौधों को नर्सरी या वनस्पति उद्यान में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। एक बार खुले वातावरण में अनुकूलित हो जाने के पश्चात इन पौधों को प्रकृति में इनके प्राकृतिक आवास में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

निष्कर्ष एवं भावी संभावनाएँ:

ट्राइकोलेपिस रोयली के संरक्षण के लिए ऊतक संवर्धन के साथ-साथ यह भी सुनिश्चित करना जरूरी है कि इसके प्राकृतिक वास को मानव गतिविधियों से संरक्षित किया जाय तथा साथ ही साथ एकल स्थानिक जाति होने के कारण इसके संरक्षण को प्राथमिकता से बढ़वा दिये जाने कि अत्यन्त आवश्यकता है। *ट्राइकोलेपिस रोयली* के सक्रिय संघटकों के बारे में अभी तक कोई ठोस प्रमाण नहीं है और अन्य जातियों की भाँति इस पर गहन अध्ययन की आवश्यकता अभी शेष है।

ऑर्किड

जीवन सिंह जलाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे

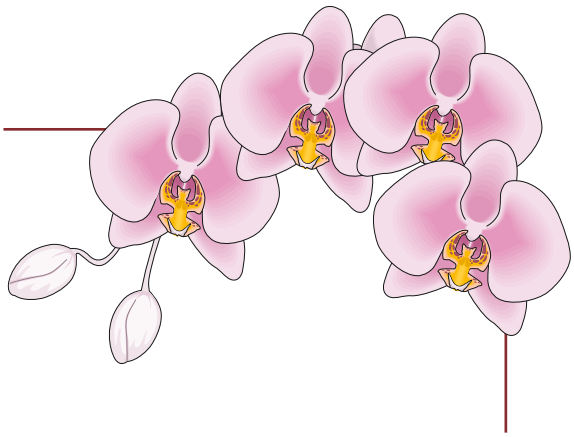

मैं प्रकृति की एक अदभुत देन हूँ,
पुष्पों के कुल का एक अनोखा किरदार हूँ,
वसुधा को अलंकृत करता मैं ऑर्किड हूं।

मैं एकबीजपत्रीय पौधों में सबसे विकसित कुल का सदस्य हूँ,
इसलिये संसार भर में अपने अदभुत एव रंग-बिरंगे फूलों के लिए प्रसिद्ध हूँ,
वसुधा को अलंकृत करता मैं ऑर्किड हूं।

मैं इस संसार में हर जगह पाया जाता हूँ,
पर अत्यधिक गर्मी और सर्दी से डरता हूँ,
वसुधा को अलंकृत करता मैं ऑर्किड हूं।

अत्यधिक नमी व वर्षा मुझे पसंद है,
क्योंकि में नम हवा पर निर्भर रहता हूँ,
वसुधा को अलंकृत करता मैं ऑर्किड हूं।

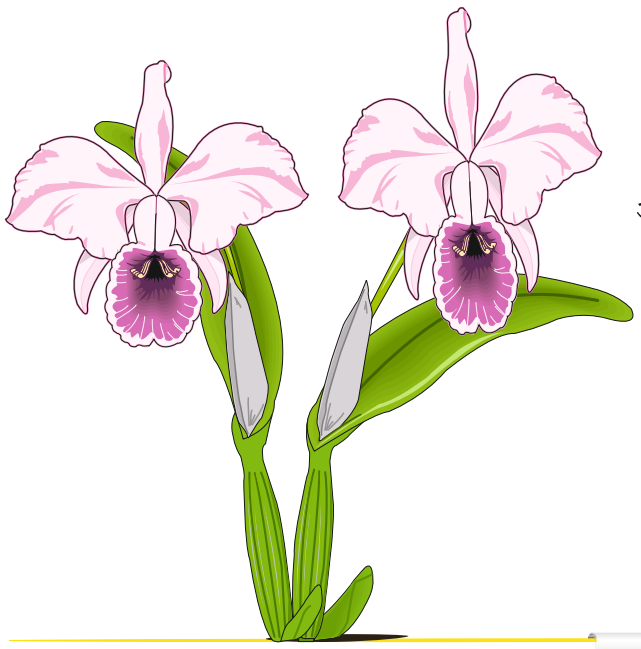

मेरे फूलों के हजारों रंग व रूप हैं,
फिर भी संरचना में सब समान हैं,
मेरे पुरखों ने मेरे भविष्य को अच्छी तरह से जाना है,
तभी तो मेरी संरचना को अद्भुत बनाया है।

अतिशय जंगलों की कटाई और जलवायु परिवर्तन से डरता हूँ,
वसुधा को अलंकृत करता मैं ऑर्किड हूं।
वसुधा को अलंकृत करता मैं ऑर्किड हूं।।

प्रकृति

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

ईश्वर की अमूल्य कृति,
वह है हमारी प्रकृति।
इसका नहीं कोई सानी,
करती है कभी -कभी मनमानी ।।

इसके समान नहीं कोई दूजा,
करते है सब इसकी पूजा।
यह जब देने पर आए,
खेत -खलिहान भंडार भर जाए ।।

इसके हैं रूप निराले,
कहीं नदियां कहीं नाले।
कहीं धान खेत है ,
कहीं मरूस्थल की रेत है ।।

जब इससे छेड़छाड़ है होती,
बाढ़ तूफान सुनामी आती।
प्रकृति का क्रोध उमड़ता,
गर्भ से जब लावा फूटता ।।

धरती आकाश तूने नापा,
पर प्रकृति का मिजाज न भांपा।
कितने भी हम ऊंचे उठ जाए ,
प्रकृति से हम पार न पाएं।

जीवन के साथी पेड़-पौधे

रजनीकांत
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पेड़ पौधे हैं धरती की अनमोल धरोहर,
मानव पीड़ा एवं धरा के दुखः लेते हैं हर।
कितना बड़ा काम ये करते,
पर्यावरण की समस्या को हल करते।

देता है हर पेड़ हवा शुद्ध,
चाहे मंगल हो या बुद्ध।
बारिश में करते पूरा सहयोग,
हर लेते हैं पर्यावरण के सब रोग।

हर हिस्सा इनका है उपयोगी,
कहीं जड़, कहीं पत्ते, कहीं छाल,
कही बीज तो, कहीं फल से बन रही औषधी।

हमें पौधे इतना कुछ देते हैं,
न कुछ मोल, इसका हमसे लेते हैं।
प्रेरणा स्रोत ये हमारे बने रहते हैं,
धरा पुत्र, धरा के लिये अपना फर्ज निभाते हैं।
प्रकृति मां के सच्चे पुत्र कहलाते हैं।

है कुछ जिम्मेदारी हमारी भी,
बचाएं हरेक संकट से पेड़ पौधों को।
है बराबर जीने का हक इनको भी।
न काटें पेड़-पौधों को,
न करें तहस-नहस जंगलों को।

वृक्षों को सम्मान देना चाहिए,
वृक्षारोपण करते रहना चाहिए,
ताकि पर्यावरण एवं जीवावरण बना रहे।

चित्रांकनः चंद्रीला रॉय

हिन्दी तुम कब मुस्कुराओगी

सौरभ सचान

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

हिन्दी तुम कब मुस्कुराओगी?
कब फागुन का फाग बनोगी, कब वीरों का राग बनोगी,
कब जन-जन के अधरों में सजोगी, कब गीत सुहाने गाओगी
हिन्दी तुम कब मुस्कुराओगी?

तेरे आलोचक कहते हैं वो गया ज़माना तेरा था
अब यूं ही सिमटी सकुची सी क्या चुपचाप यहीं रह जाओंगी ?
हिन्दी कब तुम मुस्कुराओगी ?

नहीं मानता दिल मेरा की तुम मुझसे रूठ गयी हो,
हाँ अंग्रेजी के चक्कर में थोड़ा पीछे छूट गयी हो
तुमको पूरा समझ सकूँ , ऐसी मुझमें समझ नहीं
समझ-समझ के समझ रहा हूँ, कब मेरी समझ में आओगी ?
हिन्दी कब तुम मुस्कुराओगी?
अब तुलसी, सूर, कबीर नहीं
रसखान बिहारी वीर नहीं।
अब किसकी कलम वास करोगी, किन कविताओं में निवास करोगी?
सोख सुहानी सजी हुई अब तुम कब नज़र आओगी?
हिन्दी तुम कब मुस्कुराओगी ?

जब गाँव की गोरी अल्हड़ सखियाँ, सावन गीत सुनाएगी।
फसल काटती मेंड - मेंड वो बिरहा चैती गायेंगी।
जब साज समाज समान सभी जग, सम्मुख तुम अपनाओगे।
मैं सबकी प्यारी बन जाऊँगी, मन्द-मन्द मुस्कुराऊंगी।
जब किसके किस्से खत्म करोंगे, अर्न्तमन बस जाऊंगी
वाणी का सुन्दर साज बनूँगी, मैं तेरी आवाज बनूँगी
पद्य-पद्य अंगड़ाई लूँगी, छन्द-छन्द लहराऊंगी
तुम जब-जब मुझे निहारोगे, तब-तब मैं मुस्कुराऊंगी
मैं हिन्दी हूँ मुस्कुराऊंगी
मैं हिन्दी हूँ तुम्हे महकाऊंगी।

वनस्पतियाँ जीवन का आधार

प्रतिभा गुप्ता

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

वनस्पतियों ने निर्मित किया।
माँ के गर्भ में शिशु का शरीर ॥
मानव जन्म की प्रथम सांस हेतु।
जो प्राणवायु पायी वह थी वनस्पतियों की प्रथम भेंट ॥

वनस्पतियाँ भोजन का मूल स्रोत।
ये ही हैं जल की प्रथम स्रोत ॥
वाष्पोत्सर्जन की जल वाष्प संघनित हुई।
आकाश में बादलों ने स्वरुप पाया ॥

जो जा टकराये पर्वतों से और।
वृष्टि का आन्नद सबने पाया ॥
धरती का आंचल तृप्त हुआ।
नयी वनस्पतियों के कोपल फूटे ॥

हर बगिया में फूल खिले।
मानव का जीवन महकाया ॥
वृक्षों के सूखे स्तभों ने ही।
तेरे घर का सपना साकार किया ॥

वन वनस्पतियाँ ने औषधि बनकर।
तेरे जीवन को रोग, व्याधि से मुक्त किया ॥
पूजा पाठ हवन पूजन में भी।
मानव ने इनका उपयोग किया ॥

जब मानव शरीर शिथिल हुआ।
तब लाठी बन कर साथ दिया ॥
जब जीवन का अन्त हुआ।
तब अर्थी बन कर साथ चले ॥

जब पंचतत्व में विलीन हुए।
तब भी चिता पर लकड़ियों के साथ जले ॥
और भस्मी में परिणत हुये।
जो पुनः वनस्पतियाँ वन पुनः प्रकट हुये ॥

स्वच्छ हो पर्यावरण हमारा

संजय उनियाल

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

स्वच्छ हो पर्यावरण हमारा
ऐसा कुछ करना है।
विरान पड़े इस जंगल में
तूलिका से रंग भरना है।

उम्रदराज उन दरख्तों से
उनका इतिहास सुनना है।
रोप कर नित नये पौधे
उनको जीवांत करना है।

माटी का भी है कर्ज हम पर
उस कर्ज को चुकाना है।
खोलकर नई परतें विज्ञान की
जग को फिर चमकाना है।

नई तकनीक भी है जरूरी
इसको भी अपनाना है।
पर कैसे हो इकोफ्रैण्डली
यह सबको बताना है।

गौरया की चीं चीं हो गयी लुप्त
पंछी डर कर छुप रहे।
बना कर एक घरौंदा घर पर
आंगन को चहचहाना है।

कैसे हो यह जग सुन्दर
इस पर बैठ बतियाना है।
आओ प्रण लें साल में एक दिन ही नही
हर रोज पर्यावरण दिवस मनाना है।

स्वच्छ हो पर्यावरण हमारा, ऐसा कुछ करना है।
विरान पड़े इस जंगल में, तूलिका से रंग भरना है।

सुन लो मेरी पुकार

चंद्र कुमार शर्मा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

भारत के चारों ओर मैं ही मैं खड़ा हूँ।
हजारों वर्षों से एक ही जगह पड़ा हूँ॥

न मैं चल सकता, न मैं हिलता हूँ।
पर मैं हर जगह के इंसानों से मिलता हूँ॥

ईश्वर के द्वारा ही इंसान ज्ञानी कहलाए।
पर इंसान भी मेरी पुकार क्यों नहीं सुन पाए?

लोग मुझे पहाड़ और पर्वत के नाम से जानते हैं।
मैं जहाँ रो-रो कर रहता हूँ उसमें छुट्टी मनाने आते हैं॥

कहीं बर्फ की चादर लपेटकर गगन से मैं खेलता हूँ।
कहीं हरियाली समेट कर इंसानों को झेलता हूँ॥

कभी मेरे सामने आसमान झुक जाता है।
ज्ञानी कहलाए इंसान, हर जगह चूक जाता है॥

मेरी इस हरी चादर में संजीवनी पाओगे।
सच में ज्ञानी बने तो अमर हो जाओगे॥

सुने होंगे संजीवनी अमर होने की जड़ी है।
कैसे पाओगे उसे मेरी हरी चादर को चीर-फाड़ने में पड़े हो॥

मेरे रोने की आवाज सुनकर मेरे सामने ही आते हो।
मेरे रोने की आवाज को संगीत में सजाते हो॥

मेरे बहते आंसू, झरना नाम से कहलाते हैं।
जहां लोग आकर अपना दिल बहलाते हैं॥

मेरे इस आंसू को प्यास बुझाने पीते हो।
इन्हीं को पीकर, तुम सब प्राणी जीते हो॥

मेरे इस आंसू से अपने कपड़े धुलाते हो।
पर मेरे कपड़े को चीर-फाड़कर जाते हो॥

अरे धरती के ज्ञानी इंसान, सुन लो मेरी पुकार।
एक पौधा ही दे दो मुझे, होगा तेरा उद्धार॥

जितने इंसान यहाँ मुझ से मिलने आएगा।
एक पौधा लगाओगे तो हरियाली चादर बन जायेगा॥

न रेशमी चादर माँगा, न हीरो का हार।
हरियाली से भर मुझे, वही मेरा संसार॥

इस अत्याचार को न रोके तो एक दिन पछताओगे।
जिस दिन मेरे आंसुओं में तुम सब बह जाओगे॥

पशु-पंछी जीव-जंतु सब को बेघर कर दिया।
ज्ञानी कहलाते हो और मात्र अपना सोच लिया॥

खुरद-खुरद कर बदन मेरा बजरी पत्थर को भी ले जाओगे।
मैं खड़ा कैसे रहूँ, ये कब समझ पाओगे?

अरे धरती के ज्ञानी इंसान सुन लो मेरी पुकार।
अब तक जो हुआ सो हुआ, अब तो करो सुधार॥

अगर मैं खड़ा न रहा तो तुम कैसे रह पाओगे।
मेरे आंसुओ की सुनामी में तुम सब बह जाओगे॥

बार बार मैं कहता हूँ सुन लो मेरी पुकार।
एक एक पौधा देने से होगा सबका उद्धार॥

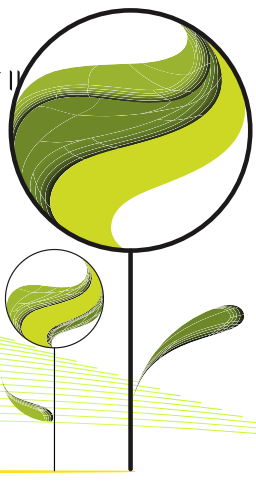

मैं वसुधा धैर्य की मूरत

कु. प्रिंशा
राजकीय प्राथमिक विद्यालय, बजेला,
धौलादेवी, अल्मोड़ा उत्तराखंड

मैं वसुधा धैर्य की मूरत
तेरे कर्मों ने मुझे गुनेहगार बना दिया
तेरे की लालच ने मेरा स्वरूप बिगाड़ दिया।
हदों में रहना सीख ले
तेरी हर कुटिल नीति ने
अब हर आपदा पर
गुनेहगार मुझे बना दिया।
महत्वाकांक्षी मत बन इतना
लील सके जो मानव जीवन को
चुका नहीं पायेगा ऋण मेरा
मैंने तुझे दिया है जितना।
पशु पक्षी पेड़ पौधे हैं मेरे श्रृंगार सभी
अक्षुण रख स्वरूप को मेरे, जिसे तुने बिगाड़ दिया।
मैं वसुधा धैर्य की मूरत
तेरे कर्मों ने मुझे गुनेहगार बना दिया।

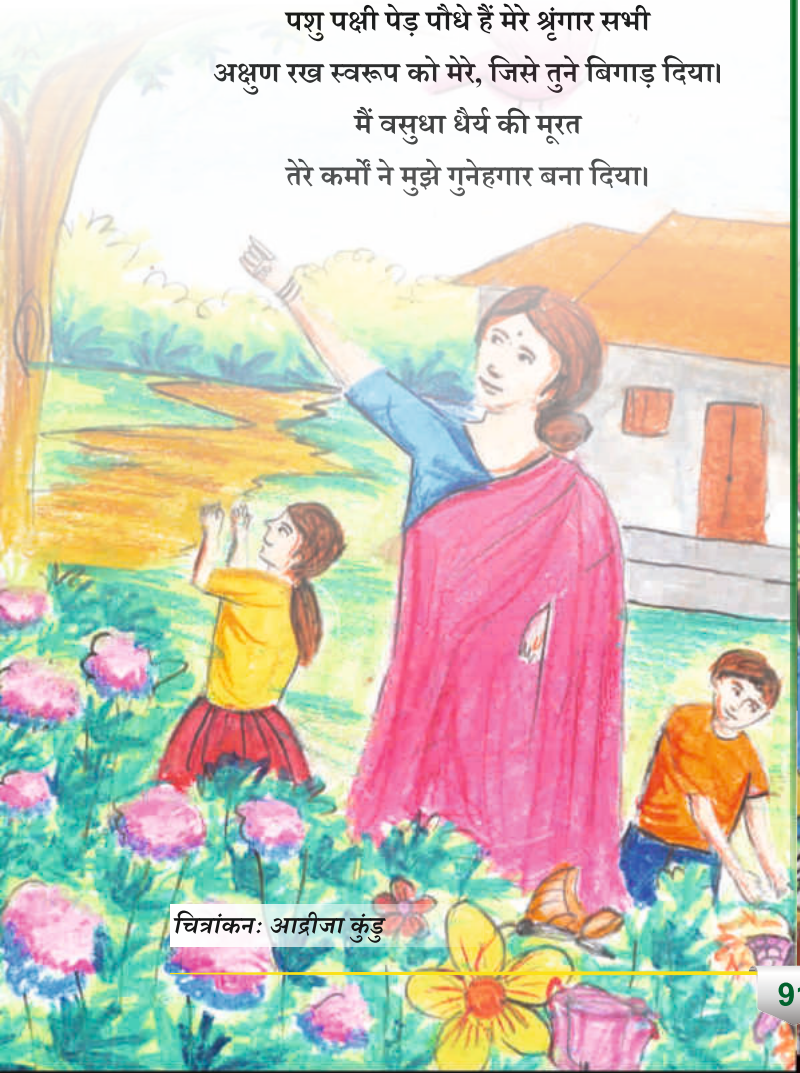

चित्रांकन: आद्रीजा कुंडु

फूल देई

कु. सीमा
राजकीय प्राथमिक विद्यालय, बजेला,
धौलादेवी, अल्मोड़ा उत्तराखंड

फूल देई आई फूल देई आई
फ्योंली बुरांश फूलों से देहली सजाई।
मुझे नहलाओ नये कपड़े पहनाओ
दादी मैं भी जाऊंगी
घर-घर जाकर फूल चढ़ायेंगें
चावल और गुड़ साथ लायेंगें
फूल देई आई फूल देई आई
फ्योंली बुरांश फूलों से देहली सजाई ।
कई दिनों से सजाये सपने
आज जाकर पूरे हुये
आज तो दादी खीर बनाना
मैं तो भर पेट खाऊंगी
आज ना डांटना आज ना फटकारना
आज तो बहुत मजे आये
घर में अपने दोस्त बुलाये
बुआ ताई साथ में आये
साथ में लाये फल और मिठाई
फूल देई आई फूल देई आई
फ्योंली बुरांश फूलों से देहली सजाई।

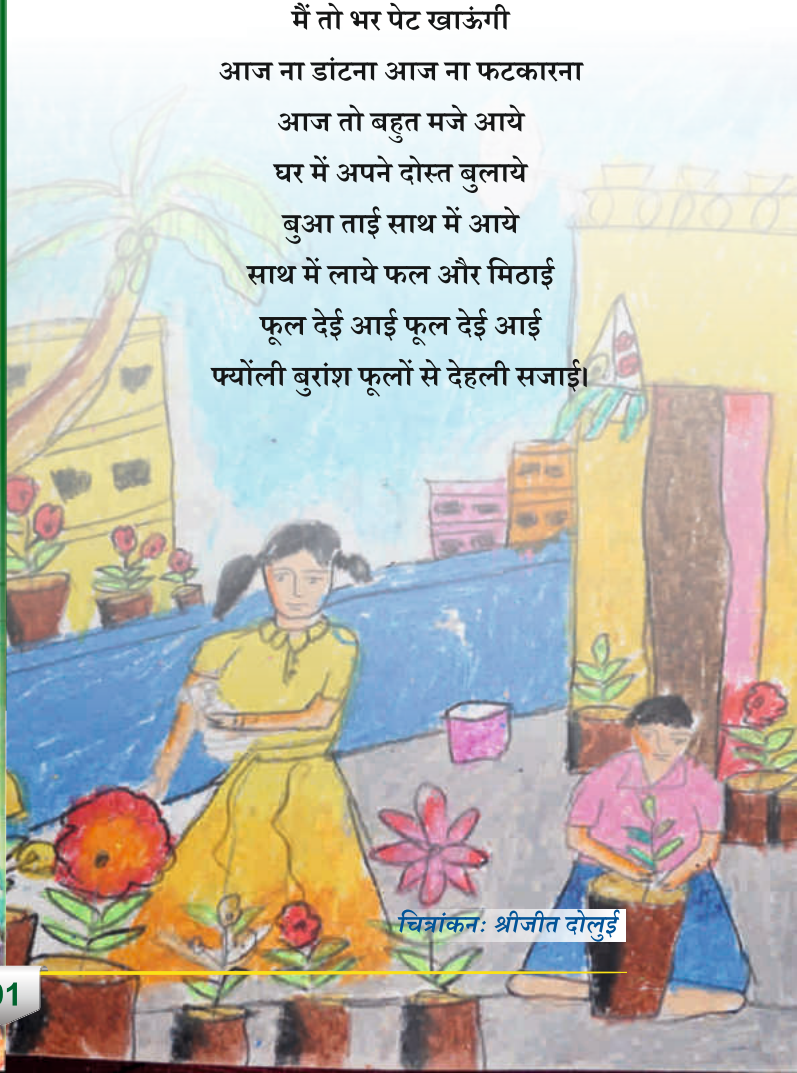

चित्रांकन: श्रीजीत दोलुई

पर्यावरण समाचार

संजीव कुमार दास

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. असम के बारपेटा जिले के एक उच्च विद्यालय में हवा के तेज झोंके से विद्यालय के परिसर में एक वृक्ष गिर गया। इस वृक्ष की छाया में विद्यालय के विद्यार्थी खड़े होते थे। इस वृक्ष के गिर जाने से विद्यार्थी मानसिक रूप से आहत हुए। इसलिए इस स्कूल के बच्चों ने शिक्षकों से मिल कर एक शोक सभा का आयोजन किया व शोक ज्ञापन किया।

द हिन्दू

2. हल्के पीले रंग के एक गुलाब का नाम प्रसिद्ध वनस्पतिज्ञ इ.के. जानकी अम्माल के सम्मान में रखा गया है। यह गुलाब कोडाइकनाल के वाटिका में शोभायामान है। वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में इ.के. जानकी अम्माल के कार्य को देखते हुए उन्हें यह सम्मान दिया गया।

द हिन्दू

3. पौधा और कवक मिलकर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव को रोकने में सक्षम है।

सांइस डेली

4. अफ्रिका की बायोबाब वृक्ष (*एडानसोनिया डिजिटाटा*) बहुत तीव्र गति से लुप्त होते जा रहे हैं। अंतराष्ट्रीय अनुसंधान कर्ता के एक दल ने बताया कि 13 में 9 वृक्ष जिनकी आयु 1000 वर्ष से अधिक है, सूखते जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण यह हो सकता है।

द सांइसटिस्ट पत्रिका

5. पौधों या वृक्षों में यह सच है कि दिमाग नहीं होता, परन्तु वे कुछ इंगितों को समझ सकते हैं उनमें सहयोग करने की भी क्षमता है।

द कनवरसेशन

6. जलवायु परिवर्तन के चलते विश्व की 60 प्रतिशत वन्य कॉफी वृक्ष लुप्त हो सकते हैं।

द कनवरसेशन

7. पर्यावरण से जुड़े अपराधों में (2016-2017) के आठ गुणा की वृद्धि हुई है। पर्यावरण से जुड़े अपराधों के करीब 70 प्रतिशत मामलें सिगरेट और तंबाकू उत्पाद से संबंधित है।

अमर उजाला पत्रिका

8. 2 अक्तूबर, 2019 से सिंगल यूज प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। प्लास्टिक के छोटे बोतल, प्लास्टिक के पानी के बोतल, प्लास्टिक के थैले ये सब सिंगल यूज प्लास्टिक में आते हैं। इन्हें दोबारा उपयोग में लाना खतरनाक होता है।

अमर उजाला पत्रिका

9. वियतनाम के यूंग हुआ जिले में जहां लोग बहुतायत में सुअर पालते हैं। वहां के एक महिला ने सूअर के मल व यूरिन को जिसमें मिथेन की मात्रा अधिक होती है को बायोगैस में तबदील कर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास किया है। इससे परिवर्तित पर्यावरण को दुरस्त करने के साथ साथ वित्तीय लाभ प्राप्त करने का मौका भी मिला है।

एशिया एंड पेशिफिक न्यूज

10. मालदीव की पर्यावरण की नवीनतम स्थिति अच्छी नहीं है। पेयजल का अभाव व जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री जल स्तर में वृद्धि यहां के पर्यावरण की स्थिति को चिंताजनक बना रही है।

पर्यावरण डाइजेस्ट

11. श्री लंका में मैनग्रोव वन वहां के आम लोगों के लिए आर्थिक संपदा है। श्री लंका में मैनग्रोव की 20 प्रजातियां है। मैनग्रोव से घर बनाने के लिए लकड़ी, ईंधन की लकड़ी व चारकोल प्राप्त होती है। परन्तु सुनामी, नगरीकरण व अन्य कारणों के चलते यहां मैनग्रोव वन में कमी आई है।

पर्यावरण डाइजेस्ट

12. सेशेल्स में विभिन्न कारणों से दावानल की घटनाएं खूब होती है। दावानल की घटनाएं यहां सूखे पत्तों से ज्यादा होती है। इससे वहां नारियल के पेड़ों को अत्यधिक नुकसान होता है।

साइंस टुडे

13. फूल, पृथ्वी को साफ -सुथरा रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का पालन करता है। यह जल और मृदा को साफ-सुथरा रखने में सहयोग करता है। सूरजमुखी फूल मृदा से रेडियोधर्मी और अन्य पदार्थो को अवशोषित कर लेता है एवं इस दौरान पूरे पौधे को भी कम नुकसान पहुंचता है। इसलिए रेडियोधर्मी वाले क्षेत्र में सूरजमुखी का पौधा रोपित किया जाना चाहिए।

नव भातर टाइम्स

14. कोलम्बियां में फूलों को व्यवसाय बहुत उन्नत है। यह देश मुख्यतः गुलाब के फूलों का निर्यात करता है। गुलदाउदी फूलों का भी निर्यात किया जाता है। करीबन 20 हजार एकड भूमि में फूलों की खेती होती है। इक्वडोर में भी फूलों का व्यवसाय बहुत उन्नत है।

पर्यावरण डाइजेस्ट

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में राजभाषा की प्रगति आख्या

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में राजभाषा को अग्राधिकार दिया गया है। हिंदी के सतत विकास के लिए साल भर विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

- सितम्बर माह में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण मुख्यालय एवं इनके सभी क्षेत्रीय कार्यालयों में हिंदी दिवस, हिंदी सप्ताह व हिंदी पखवाड़ा का आयोजन किया जाता है।
- प्रत्येक वर्ष' वनस्पति वाणी का प्रकाशन किया जाता है। इस प्रकाशन में हमारे वैज्ञानिकों व कर्मचारियों के उत्कृष्ट लेखों के माध्यम से विज्ञान लोक व्यापिकरण के साथ विभाग की गतिविधियों, शोधकार्यों पर रोचक जानकारी प्रकाशित की जाती है।
- वनस्पतियों से संबंधित नवीनतम जानकारियों के साथ वार्षिक द्विभाषी पत्रिका 'वनस्पति अन्वेषण – 2018' विश्व पर्यावरण दिवस के शुअवसर पर प्रकाशित किया गया है। इस पत्रिका में वनस्पतियों के विभिन्न समूहों से संबंधित नयी जानकारी प्राप्त होती है।
- भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण कोलकाता शहर में होने वाले राजभाषा संबंधी बैठकों में सहभागिता करता है। राजभाषा के प्रोत्साहन के लिए इस कार्यालय में 'प्रोत्साहन योजना' लागू की गई है। हिंदी सिखने के लिए सुविधा व आवश्यकतानुसार कर्मचारियों को हिंदी प्रशिक्षण के लिए भेजा जाता है। हिंदी व्याकरण व हिंदी से संबंधित अन्य जानकारी प्रदान करने के लिए नियमित अंतराल पर हिंदी कार्याशाला का आयोजन किया जाता है।
- हिंदी के प्रचार -प्रसार के लिए यह कार्यालय द्विभाषी रूप में दीवार कैलेंडर व टेबल कैलेंडर का प्रकाशन कर रहा है।
- मुख्यालय में दीवार पत्रिका में कर्मचारीगण स्वरचित लेख व कविताएं प्रस्तुत करते हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में हिंदी में नोटिंग ड्राफ्टींग को उच्च प्राथमिकता दी जाती है।
- यह विभाग कोलकाता स्थित केन्द्रीय कार्यालयों में आयोजित हिंदी दिवस में सहयोग प्रदान करता है।

लेखकों के लिए निर्देश

सभी लेखक वनस्पति वाणी में प्रकाशन हेतु रचनाएं भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें:

- लेखक अपनी रचनायें भेजते समय लेख के अंत में संदर्भों (अधिकतम 5) का उल्लेख अवश्य करें।
- रचना वनस्पति विज्ञान की किसी महत्वपूर्ण सूचना, अनुसंधान, उपयोग, महत्व इत्यादि से संबंधित एवं मौलिक होनी चाहिए तथा रचना की विषय वस्तु विगत वर्षों में प्रकाशित रचनाओं से भिन्न हो। रचनाएं ए-4 आकार के कागज पर 12 फॉन्ट साइज एवं द्विपंक्ति अन्तर में टंकित अथवा सुपाठ्य एवं स्पष्ट रुप से हस्तलिखित होनी चाहिये। वर्तनी एवं व्याकरण पर विशेष ध्यान दें। प्रयास करें कि लेख की पांडुलिपि 10 टंकित पृष्ठों से अधिक न हो तथा छाया चित्रों की अधिकतम दो ही प्लेटें हों।
- कविताएं प्रस्तुत करते समय ध्यान रखें कि कविता का मूल भाव स्पष्ट रहें एवं कविता तुकान्त हों।
- वर्गीकरण शब्दावली का प्रयोग Class - वर्ग, Order - गण, Family - कुल, Genus - वंश, Sub-species - उपजाति, Variety - प्रभेद, Form - रुप में करें। तथा टंकित रचनाओं में वंश एवं जाति का नाम तिरछे (*italic*) में एवं हस्तलिखित रचनाओं में रेखाकिंत (underline) करें।
- वनस्पतियों के नाम लिखते समय ध्यान रखें कि सबसे पहले वनस्पति का प्रचलित नाम तत्पश्चात् यदि आवश्यक हो तो वनस्पतियों के क्षेत्रीय नामों का प्रयोग प्रचलित के बाद किया जाये।
- एक ही लेख में एक ही तथ्य की बार-बार पुनरावृत्ति से बचें।
- औषधीय उपयोग से संबंधित लेखों में रोगों के प्रचलित हिंदी नामों का प्रयोग करें। अंग्रेजी नामों को अपरिहार्य स्थिति में देवनागरी लिपि में लिखें।
- जहाँ तक संभव हो लेख को सहज एवं सरल रुप प्रस्तुत करें, जिससे सभी पाठक सुगमता से समझ सकें।
- लेख में सम्मिलित फोटो-प्लेट्स के साथ इसमें उपयोग किये गये छायाचित्रों की अलग (JPEG) फाइल भी भेजें एवं छायाचित्रों की प्लेटें बनाते समय लिजेन्ड में संख्यागत क्रम (1,2,3.....) का प्रयोग करें, प्लेटों पर प्रयोग किये गये चित्रों की मूल प्रति अनिवार्यतः उपलब्ध करवाएं।
- इन्टरनेट से लिये गये चित्रों का प्रयोग कदापि न करें तथा कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन नहीं करें।
- रचनाओं में दिये गये तथ्यों एवं सूचनाओं के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे, अतः तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक रचनायें ही भेजें।
- विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों के कार्यालयअध्यक्षों से अपेक्षा है कि वे अपने स्तर पर लेखों/कविताओं का मूल्यांकन एवं सम्पादन कर, मुख्यालय को प्रेषित करें।

राजभाषा हिंदी से संबंधित विविध जानकारियां

हिंदी शिक्षण योजना के अधीन प्रबोध, प्रवीण व प्राज्ञ के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनाएं

प्रबोध: यह प्रशिक्षण प्रारम्भिक स्तर का है । इसमें कन्नड, तमिल, मलयालम, तेलगु, अंग्रेजी और मणिपुरी/मिजो भाषा-भाषी अधिकारी/कर्मचारी जिन्हें प्राइमरी स्तर का भी हिंदी का ज्ञान नहीं हैं, प्रबोध प्रशिक्षण के पात्र हैं।

प्रवीण: यह पाठ्यक्रम माध्यमिक स्तर का है। इसमें प्रबोध परीक्षा उत्तीर्ण तथा गुजराती, मराठी, बंगला, असमिया और उड़िया भाषा-भाषी अधिकारी और कर्मचारी जिन्हें माध्यमिक स्तर तक का हिंदी का ज्ञान नहीं है, वे प्रवीण में प्रवेश पा सकते हैं।

प्राज्ञ: इस पाठ्यक्रम में प्रवीण परीक्षा उत्तीर्ण अधिकारी/कर्मचारी तथा अन्य हिंदीतर भाशी कर्मचारी जिनकी मातृभाषा पंजाबी, उर्दू, कश्मीरी, तथा पश्तों है और जिन्हें मैट्रिक स्तर का हिंदी का ज्ञान नहीं है, प्रशिक्षण हेतु पात्र हैं।

हिंदी में प्रवीणता- यदि किसी कर्मचारी के

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिंदी में उत्तीर्ण कर ली है, या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिंदी एक वैकल्पिक के रूप में लिया था या

(ग) यदि वह इन नियमों कें उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है, तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिंदी के प्रवीणता प्राप्त कर ली हैं।

हिंदी में कार्यसाधक ज्ञान - यदि किसी कर्मचारी ने

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिंदी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है, या केन्द्रीय सरकार की हिंदी प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या यदि उसने सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अंतर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण ली है , या केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है या यदि वह इन नियमों कें उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो उसके बारे में यह समझाा जाएगा कि उसने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

राजभाषा प्रोत्साहन /पुरस्कार योजना

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के कार्यालय ज्ञापन संख्या 12013/18/93-रा.भा. दिनांक 16.9.98 के अंतर्गत सरकारी कामकाज (टिप्पण व आलेखन) मूल रूप से हिंदी में करने के लिए प्रोत्साहन योजना के तहत नकद पुरस्कार का प्रावधान है। इस योजना में कुल 10 पुरस्कारों का प्रावधान है। हिंदी में कार्य करने का मूल्यांकन हेतु 100 अंक होगें। इसमें से 70 अंक हिंदी में किये गये कार्य की मात्रा व 30 अंक विचारों के स्पष्टता के लिए होंगे। इसके तहत पदधारी अपने साल भर के कार्य उच्च अधिकारी सत्यापन करवाकर प्रस्तुत कर सकते है। पहला पुरस्कार (2 पुरस्कार) प्रत्येक रू 5000/-दूसरा पुरस्कार (3 पुरस्कार) प्रत्येक रू 3000/- तीसरा पुरस्कार (5 पुरस्कार) प्रत्येक रू 2000/-। 'क' व 'ख' क्षेत्र में आने वाले क्षेत्र के पदधारी को कम से कम 20,000 शब्द लिखने होंगे।

हिंदी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा/माह के आयोजन के संबंध में

हिंदी भाषा के देशव्यापी प्रसार और स्वीकार्यता को देखते हुए 14 सितंबर, 1949 को इस संघ की राजभाषा का दर्जा दिया गया था। इस दिवस की स्मृति में प्रति वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। (कार्यालय ज्ञापन संख्या 1/14034/2/87-रा.भा.(का)

दि.21. 4 .87। हिंदी पखवाड़ा के दौरान ऐसी प्रतियोगिताएं आयोजित की जाएं, जिनका संबंध सरकारी कामकाज से हो और साथ -साथ वह राजभाषा का प्रयोग बढ़ाने में सहायक हो।

पुरस्कार राशि एवं आयोजन पर होने वाले व्यय का निर्धारण मंत्रालय/विभाग/कार्यालय द्वारा अपने विवेकानुसार आंतरिक वित्त विभाग के अनुमोदन से किया जाए।

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976

नियम 8 (1) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत हिंदी या अंग्रेजी में लिख सकता है।

उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करें।

(2) उपनियम (1) किसी बात के होते हुए भी केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा जिन्हें हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है,टिप्पण,प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए जो आदेश में विनिर्दि किए जाएं, केवल हिंदी का प्रयोग किया जाएगा

नियम 10(2) यदि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों/अधिकारियों में से 80 प्रतिशत ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतः यह समझाा जाएगा कि उन्होंने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

नियम 10 (4) केन्द्रीय सरकार के जिन कार्यालयों के 80 प्रतिशत कर्मचारियों/अधिकारियों ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किये जायेगें।

राजभाषा नियम 1976 के नियम 12 के अनुसार केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यालयों के प्रमुखों का यह दायित्व बनता है कि वे राजभाषा अधिनियम, नियमों तथा समय -समय पर राजभाषा विभाग से जारी निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करें।

गतिविधियां

1

2

3

4

5

6

7

1. श्री सी. के. मिश्रा, सचिव एवं श्रीमती मंजू पाण्डेय, संयुक्त सचिव, पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा का निरिक्षण; 2 एवं 3. ग्रीन स्किल डेवलप्मेंट कार्यशाला का उदघाटन करते डॉ. ए.ए.माओ, निदेशक, भा.व.स., एवं. कार्यशाला में प्रशिक्षण लेते प्रतिभागी; 4 एवं 5. अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस 22 मई, 2019 के अवसर पर प्रतिभागीयों को सम्बोधित करते निदेशक, भा.व.स. एवं कार्यक्रम के मुख्य अतिथी डॉ. सी.एच. रहमान; 6 एवं 7. अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस की थीम *हमारी जैव विविधता, हमारा भोजन, हमारा स्वास्थ्य* विषय पर आयोजित चित्रकला प्रतियोगिता में प्रतिभाग करते स्कूली बच्चे एवं विजेताओं को पुरुस्कार देते निदेशक महोदय।

1

2

3

4

5

1. विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर जागरूकता रैली निकालते प्रतिभागी; 2. अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस 2019 के अवसर पर योग प्रशिक्षण में भाग लेते विभागीय अधिकारी एवं कर्मचारी; 3. विश्व पर्यावरण दिवस, 2019 के अवसर पर चित्रकला प्रतियोगिता में भाग लेते प्रतियोगी; 4. ओजोन दिवस के अवसर पर आयोजित जागरूकता रैली; एवं 5. केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा का निरिक्षण करते श्री रवि अग्रवाल, अपर सचिव, वन पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली।

श्री सी.के. मिश्रा, सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा में 7 मार्च, 2019 को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों को संबोधित करते हुए।

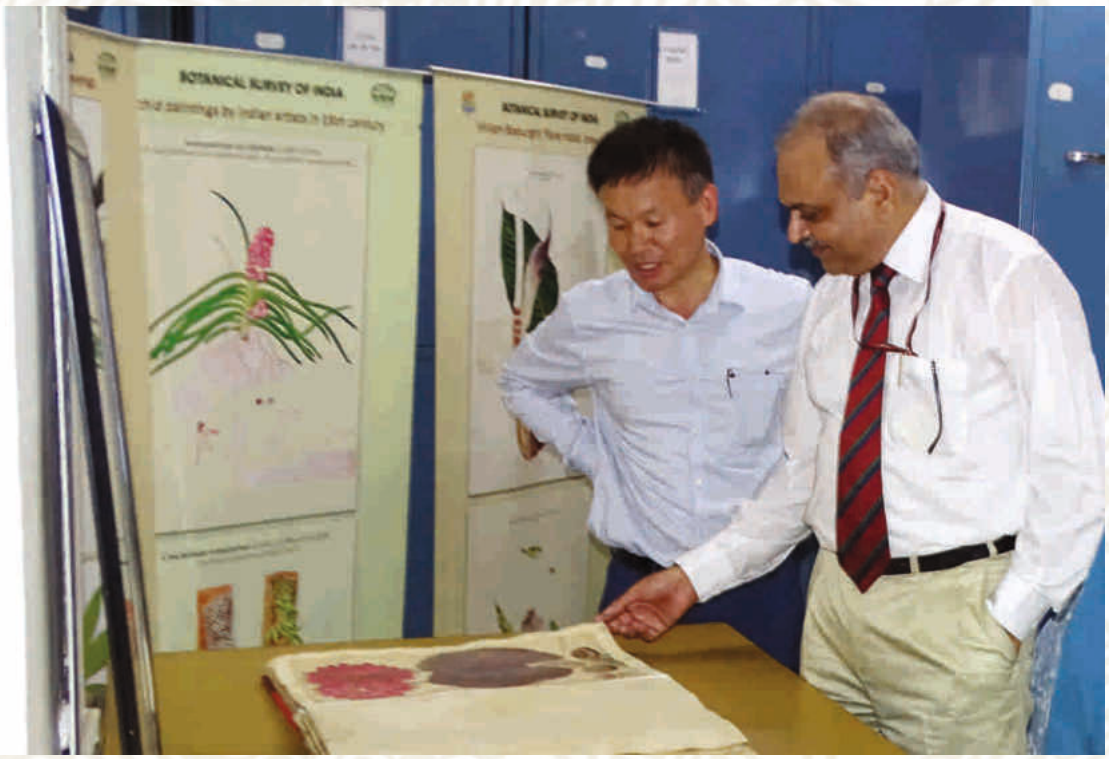

श्री रवि अग्रवाल, अपर सचिव, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार, केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा में दिनांक 20 सितम्बर, 2019 को निरिक्षण के दौरान साथ में निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण।

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, सॉल्ट लेक सिटी, कोलकाता -700 064 द्वारा प्रकाशित
ISSN 0975-4342